अंक-05, सितम्बर 2024

गुरु-दर्शन

राजभाषा प्रकोष्ठ
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर (छ.ग.)
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)

कुलगीत

‘मनखे–मनखे एक समान’

बाबा गुरु घासीदास
1756 - 1850

गुरु कृपा के पुण्य परस से, विद्या का वरदान है।
घासीदास विश्वविद्यालय, हम सब का अभिमान है।
महानदी, शिवनाथ, नर्मदा, हसदो, पावन धारा है।
अंतः सलिला अरपा का, सतत् प्रवाह हमारा है।
छत्तीसगढ़ की माटी का, यह अभिषेक महान है।
भोरमदेव, सरगुजा, शिवरी, रतनपुर, मल्हार यहीं।
कालिदास का आम्रकूट है, अमर काव्य श्रृंगार यहीं।
धरती, गगन, सघन वन गूंजे, जीवन का नवगान है।
शस्य भगीरथ कोरबा जैसी, लोक-शक्ति की लाली है।
जाग उठे हैं गांव हमारे, जागे सभी किसान हैं।
ज्ञान सभ्यता से आलोकित, विद्वत्जन सम्मान जहां।
माधव, लोचन, मुकुटधर पाण्डेय, बख्शी जी अरु भानु यहां।
राव, विप्र, रविशंकर, छेदी, कुंवर वीर का गान है।
मानव मूल्यों का सृजन करें हम, समता, ममता, शांति भरे।
हर्षित, पुलकित हो भारत मां, सुख-समृद्धि सर्वत्र झरे।
विद्या-मंदिर के प्रांगण से, नव-युग का अभिमान है।
गुरु कृपा के पुण्य परस से, विद्या का वरदान है।

गुरु घासीदास विश्वविद्यालय का यह कुलगीत प्रसिद्ध राजनेता एवं ख्यातिलब्ध साहित्यिक कवि और छत्तीसगढ़ विधानसभा के प्रथम अध्यक्ष स्व. **पं. राजेन्द्र प्रसाद शुक्ल द्वारा रचा गया है।**

गुरु-दर्शन

(राजभाषा प्रकोष्ठ की वार्षिक पत्रिका)

संरक्षक
प्रो. आलोक कुमार चक्रवाल
कुलपति

प्रबंधन
प्रो. अभय एस. रणदिवे
कुलसचिव

सम्पादक
अखिलेश कुमार तिवारी
हिंदी अधिकारी

सम्पादक मण्डल
प्रो. गौरी त्रिपाठी
डॉ. संतोष सिंह ठाकुर
डॉ. रमेश कुमार गोहे

राजभाषा प्रकोष्ठ
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर (छ.ग.)
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)
दूरभाष : (07752) 260473
ई—मेल—rajbhashacellggu@gmail.com

आवरण

गुरु-दर्शन

दर्शन का संबंध साक्षात्कार से है। साक्षात्कार के व्यापक संदर्भों में से एक आत्म साक्षात्कार भी है। आत्म साक्षात्कार का संबंध खुद को जानने, समझने और सीखने से है। हमारे सीखने या जानने के जो भी स्रोत हैं, उन्हें हम गुरु रूप में स्वीकार करते हैं। मनुष्य प्रकृति में सीखने या जानने का सबसे उत्सुक प्रतीक है उसने अपना समस्त ज्ञान प्रकृति से ही अनुभूत कर अर्जित किया है। सहजता ज्ञान का प्रमुख उपादेय है समता के बीज इसी में सन्निहित हैं। ज्ञान 'स्व' से परे 'पर' की स्वीकारोक्ति देता है। यह 'पर' का स्वीकार ही हमें संवेदनशील बनाता है, और सत्य के अधिक निकट ले जाता है। अठारहवीं सदी के महान संत एवं सतनाम पंथ के प्रवर्तक गुरु घासीदास जी के नाम पर स्थापित है। उन्होंने अपनी अमृतवाणी में इसी समता और सत का संदेश दिया है। आवरण चित्र के माध्यम से गुरु घासीदास जी के संदेशों के अनुरूप समता और सत्य के प्रकाश को मनुष्य द्वारा स्वीकार करते हुये उसे ज्ञान के माध्यम से अधिक मानवीय, सहज एवं सत्यनिष्ठ होने के प्रतीक रूप में दर्शाया गया है।

(आवरण पृष्ठ की साज–सज्जा विश्वविद्यालय की टीम उड़ान–8 के छात्र–छात्राओं ने की है)

संदेश

प्रो. आलोक कुमार चक्रवाल
कुलपति

स्वतंत्र भारत की संविधान सभा ने सर्वसम्मति से जो निर्णय "संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी " लिया था, उसे केन्द्र तथा राज्य शासन के कार्यालयों ने अपने राज-काज की भाषा के रूप में आत्मसात कर के नैतिक और विधिक जिम्मेदारी के रूप में अपनाया है। भारत के बहुभाषिक समाज को सेतु की तरह जोड़े रखने में सक्षम हिंदी भाषा, दूसरी किसी भी भाषा और बोली के शब्दों को आत्मस्थ करने में समर्थ है। हिंदी भाषा की यह शक्ति शैक्षिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रगति के लिए अक्षय-निधि के समान है।

अत्यंत हर्ष का विषय है कि विश्वविद्यालय का राजभाषा प्रकोष्ठ विगत वर्षों की भाँति इस वर्ष भी अपनी वार्षिक पत्रिका “गुरु-दर्शन” के अनवरत प्रकाशन का गुरु संकल्प पूरा कर रहा है। विश्वविद्यालय का राजभाषा प्रकोष्ठ अपने इस शिव संकल्प को अपनी निष्ठा और कर्तव्य परायणता के साथ पूरा करता आ रहा है।

अपने ध्येय को पूरा करता विश्वविद्यालय का राजभाषा प्रकोष्ठ, हिंदी की गुरुदर्शन पत्रिका के वार्षिक प्रकाशन द्वारा विद्यार्थियों, शिक्षकों एवं कर्मचारियों की प्रतिभा को मुखरित करने, संजोने एवं संवारने का भी कार्य करते आ रहा है। मुझे विश्वास है कि पत्रिका के इस पांचवें संस्करण में प्रकाशित रचनाएँ अपनी सार्थकता का मानक स्थापित करेंगी।

अस्तु, गुरु-दर्शन के सम्मानित सम्पादक मण्डल, रचनाकारों तथा प्रकाशन से जुड़े सभी लोगों को हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ।

संदेश

प्रो. अभय एस. रणदिवे
कुलसचिव

भारत की संविधान सभा ने, भारतीय संघ सरकार के काम-काज की शासकीय राजभाषा के रूप में, देवनागरी लिपि और हिंदी भाषा को अपनाया था। इसलिए यह हम सभी की जिम्मेदारी है कि संविधान की भावनाओं के अनुरूप कार्यालयों में हिंदी का अधिकाधिक प्रयोग किया जाय। हिंदी की लोकप्रियता इसलिए और भी है कि यह दूसरी किसी भी भाषाओं -बोलियों के शब्दों को अपने में समाहित करने की विलक्षण क्षमता रखती है।

यह सुखद और सराहनीय है कि राजभाषा के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए गुरु घासीदास विश्वविद्यालय का राजभाषा प्रकोष्ठ सतत सक्रिय है। राजभाषा प्रकोष्ठ की यह कर्मठता है कि यह नियमित रूप से राजभाषा की कार्यशालाओं एवं साहित्यिक कार्यक्रमों का आयोजन करने के साथ-साथ हिन्दी वार्षिक पत्रिका "गुरु दर्शन" का भी सतत प्रकाशन करता है| हिंदी हमारी राजभाषा है, इसलिए यह हमारी संवैधानिक और नैतिक जिम्मेदारी बनती है कि सरकारी कामकाज में हम इसके प्रसार और प्रयोग को बढ़ावा दें। संघ सरकार की राजभाषा नीति के अनुसार भी हमें सरकारी कामों में हिन्दी के प्रसार और प्रयोगों को बढ़ावा देना चाहिए।

राजभाषा प्रकोष्ठ का हिंदी का कार्यालयी भाषा व्यवहार सराहनीय हैI यह प्रकोष्ठ "गुरु दर्शन"वार्षिक हिंदी पत्रिका के बहाने विश्वविद्यालय के अधिकारियों- कर्मचारियों को अपनी रचनात्मक प्रतिभा प्रदर्शित करने एवं उसे और निखारने के लिए उचित मंच भी प्रदान कर रहा है। विगत वर्षों की भाति इस वर्ष भी यह पत्रिका अपने पूर्ण स्वरूप में प्रकाशित होने जा रही है। पत्रिका-प्रकाशन के गुरु-प्रयासों के लिए मैं प्रकोष्ठ को शुभकामनाएं प्रदान करता हूँ। पत्रिका का अनवरत सफल प्रकाशन स्वयं ही इसकी सफलता का द्योतक है।

सम्पादक की कलम से....

अखिलेश कुमार तिवारी
हिंदी अधिकारी

14 सितंबर, 1947 को भारत की संविधान सभा द्वारा हिंदी को संघ की राजभाषा के रूप में स्वीकार किए जाने के 75 वर्ष पूरे हो चुके हैं। विगत वर्ष हिंदी के महत्व को रेखांकित करते हुए राजभाषा हीरक जयंती वर्ष मनाया गयाI स्वतंत्रता आंदोलन से लेकर अब तक, हिंदी ने देश को एक सूत्र में पिरोकर रखने और सामूहिक सद्भावना को सुदृढ़ करने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। हिंदी की इसी शक्ति के कारण इसे बढ़ावा देने वालों में लोकमान्य तिलक, महात्मा गाँधी, लाला लाजपत राय, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, राजगोपालाचारी आदि का नाम प्रमुखता से लिया जाता हैI इनके साथ अन्य हिंदी एवं गैर-हिंदी भाषी महानुभावों की भी उल्लेखनीय भूमिका रही है। आजादी के बाद हिंदी को संघ की राजभाषा का दर्जा दिया गयाI संविधान की आठवीं अनुसूची में हिंदी के साथ-साथ अन्य प्रमुख भारतीय भाषाओं को भी स्थान दिया गया। वर्ष 1977 में तत्कालीन विदेश मंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने पहली बार संयुक्त राष्ट्र की आम सभा को हिंदी में संबोधित कर राजभाषा का मान बढ़ाया। वहीँ देश के प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी, अंतरराष्ट्रीय मंचों पर लगातार हिंदी भाषा में संबोधन देकर विश्व पटल पर हिंदी को स्थापित कर रहे हैंI यह हम सभी के लिए गौरव का विषय तो है ही, साथी ही इससे विदेशों में भी हिंदी का मान बढ़ा है।

गुरु घासीदास केंद्रीय विश्वविद्यालय, बिलासपुर में राजभाषा नीति एवं नियमों का पालन करते हुए हिंदी में कार्यालयीन कार्य किए जा रहे हैं। इसी कड़ी में विश्वविद्यालय से द्विभाषी विज्ञापन जारी हो रहे हैं, चाहे वह प्रवेश अधिसूचना हो या फिर भर्ती संबंधी विज्ञापनI साथ ही विश्वविद्यालय से जारी होने वाले कार्यालयीय ज्ञाप, परिपत्र, अधिसूचना आदि को द्विभाषी रूप दिया जा रहा हैI माननीय कुलपति महोदय प्रो. आलोक कुमार चक्रवाल की प्रेरणा एवं मार्गदर्शन में यहाँ लगातार साहित्यिक आयोजन किए जा रहे हैं। प्रत्येक तिमाही में विश्वविद्यालय के कर्मचारियों के लिए राजभाषा प्रशिक्षण कार्यशाला का आयोजन किया जाता है। विगत वर्ष छात्र – छात्राओं के लिए हिंदी लेखन कार्यशाला का आयोजन किया गयाI प्रति वर्ष हिंदी दिवस समारोह, अन्तरराष्ट्रीय मातृभाषा दिवस समारोह, विभिन्न साहित्यकारों की जयंती पर समारोह, काव्य संध्या आदि का आयोजन किया जाता हैI इसी कड़ी में गुरु घासीदास विश्वविद्यालय की राजभाषा पत्रिका 'गुरु-दर्शन' के पांचवें अंक का प्रकाशन किया जा रहा है। 'गुरु-दर्शन' का यह अंक भी पूर्व की तरह विश्वविद्यालय की रचनाधर्मिता का प्रतिबिंब है। इस अंक में आलेख के साथ कविताओं का भी समावेश है।

उम्मीद है कि 'गुरु-दर्शन' का यह अंक भी पहले की तरह आपको पसंद आएगा। आगामी अंक को और बेहतर बनाने के लिए आपके अमूल्य सुझावों का स्वागत है।

जय हिंदी। जय भारत।

अनुक्रम

आलेख

ग़ज़ल के विभिन्न पहलू - प्रो. अमित कुमार सक्सेना
राज्य निर्माण में चंदूलाल चंद्राकर का योगदान - प्रो. प्रदीप शुक्ला
गुरु घासीदास बाबा और महिला सशक्तीकरण - प्रो. अनुपमा सक्सेना
संगीत से चिकित्सा: प्राकृतिक उपाय - प्रो. दिनेश कुमार मिश्रा
साहित्य के बदलते सरोकार और अँधा युग - प्रो. गौरी त्रिपाठी
जीवीवी में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का कार्यान्वयन - डॉ. संपूर्णानंद झा
अस्तित्ववादी दर्शन: एक विवेचन - डॉ. संतोष सिंह ठाकुर
उच्च शिक्षा में कृत्रिम बुद्धिमत्ता - डॉ. हरीश रजक
उस क्षण के इंतजार में - डॉ. विकास राजपोपट
संत कवियों की उलटबासी - डॉ. राजेश मिश्र
सार्वदेशिक सत्ता और कविता - डॉ. अखिलेश गुप्ता
सावित्री बाई फुले एवं वर्तमान परिदृश्य - डॉ. अनीश कुमार
हिंदी साहित्य में विज्ञान कथा - डॉ. आशीष कुमार यादव

कविता

जिदगी की नजदाकियाँ - डॉ. आशुतोष सिंह
गजदल की यादें - डॉ. प्रसून सोनी
दिल्ली की बस यात्रा - श्री टिकेन्द्र प्रकाश सिंह

प्रो. अमित कुमार सक्सेना

ग़ज़ल के विभिन्न पहलू

चुपके चुपके रात दिन आंसू बहाना याद है
हम को अब तक आशिक़ी का वो ज़माना याद है - हसरत मोहानी

संगीत में जरा भी रूचि रखने वाले हर शख्श को ये ग़ज़ल जरूर सुनाई पड़ी होगी। मशहूर ग़ज़ल सम्राट गुलाम अली जी ने ये ग़ज़ल गयी है। निकाह फिल्म से प्रसिद्धि में आयी इस ग़ज़ल के बाद ही अनेक लोगो को ग़ज़ल में रूचि उत्पन्न हुई, ऐसा कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा।

ग़ज़ल को सुनने और गाने का भी एक विशिष्ट समय और स्थान होता है जब कोई व्यक्ति शांत माहौल में बैठकर कुछ संगीत सुनना चाहता है तो ग़ज़ल उसके लिए सर्वश्रेष्ठ साधन है मनोरंजन का। ग़ज़ल धूम धड़ाके के संगीत से एकदम विपरीत होती है और इसके पसंद करने वालों की एक अलग श्रेणी है ।

ग़ज़ल वास्तव में फ़ारसी एवं उर्दू कविता कि पारंपरिक शैली में प्रस्तुत होती है जो अधिकांश छंद के रूप में लयबद्ध होती है।

ग़ज़ल की शुरुआत ७वी शताब्दी से हुई बताई जाती हैऔर आज इसकी पहचान और लोकप्रियता विश्व भर में है विशेषकर एशिया के देशों मे।

किसी भी ग़ज़ल के प्रमुख अवयव निम्न होते हैं ।

शेर : किसी भी ग़ज़ल में 2-2 पंक्तियों के जोड़े (couplets) को शेर कहते हैं। शेर स्वम में पूर्ण होते हैं और अकेले ही किसी अभिव्यक्ति के लिए सक्षम होते हैं।

ग़ज़ल: सामान्यतः 5 या उसी अधिक शेर के समूह को ग़ज़ल कहा जाता है कभी कभी एक ग़ज़ल में 8 -10 शेर भी हो सकते हैं। गायन के हिसाब से देखा जाये तो लोकप्रिय ग़ज़ल के 2 -4 शेर ही गाये जाते हैं वैसे ये श्रोता समूह की रूचि पर निर्भर करता है की वो कितनी लम्बी देर तक कोई ग़ज़ल सुनना पसंद करते हैं।

नज़्म : ये भी ग़ज़ल की तरह होती है पर एक अंतर स्पष्ट है। एक ग़ज़ल के सारे शेर एक दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं रखते हैं अर्थात पहला शेर कुछ बयां करता है (फलों के बारे में उदाहरण के तौर पर) और दूसरा शेर कुछ और (मौसम के बारे में उदाहरण के तौर

पर) ऐसे ही बाकि अन्य भी अलग अलग अर्थ और भावना व्यक्त करते है। एक नज़्म में ग़ज़ल की तरह शेर तो होते हैं परन्तु सारे शेर किसी एक ही भाव को व्यक्त करते हैं। इस प्रकार एक नज़्म एक कहानी है जिसके शेर उस कहानी को पूरा करते हैं एक दूसरे को आगे बढ़ाते हुए जबकि ग़ज़ल में किसी शेर का दूसरे शेर से कोई ताल्लुक नहीं होता है।

मतला : किसी ग़ज़ल का प्रथम शेर मतला कहलाता है और ये सामान्यतः दोहराया जाता है प्रत्येक शेर के बाद ।

रदीफ़: प्रत्येक शेर का अंतिम शब्द रदीफ़ कहलाता है और सुनने में एक जैसा होता है जैसे चुपके चुपके ग़ज़ल में याद है याद है।

मक़्ता (maqta): किसी ग़ज़ल का अंतिम शेर मकता होता है और अधिकांशतः ग़ज़ल के शायर (कवि) का नाम इसमें शामिल होता है।

एक ग़ज़ल के द्वारा इसकी व्याख्या की जा सकती है

किया है प्यार जिसे हम ने ज़िंदगी की तरह
वो आश्ना भी मिला हम से अजनबी की तरह।

कभी न सोचा था हम ने 'क़तील' उस के लिए
करेगा हम पे सितम वो भी हर किसी की तरह

अंत में प्रयुक्त 'क़तील ' शायर का नाम हैं इसलिए ये शेर मक़्ता है । अब कुछ प्रसिद्ध ग़ज़ल, उनके शायर और गायकों की चर्चा किया जाना जरुरी है।

ग़ज़ल का इतिहास पुराना है इसलिए कुछ ग़ज़ल गायक / शायर अविभाजित भारत पाकिस्तान से हैं या तो यहाँ जन्म लिए और पाक में बस गए या इसके विपरीत हुआ है।

गुलाम अली: पाकिस्तान के मशहूर ग़ज़ल गायक गुलाम अली ग़ज़ल गायिकी में अपना एक अलग स्थान रखते हैं और वो पटियाला घराना से हैं तथा बड़े गुलाम अली साहब के शिष्य है। इन्होने कई एल्बम दी हैं और उर्दू पंजाबी में बेजोड़ ग़ज़ल गाई हैं। बॉलीवुड की कुछ फिल्मों में भी इन्होने ग़ज़ल गयी हैं। कुछ मधुर ग़ज़ल निम्न हैं।

चुपके चुपके रात दिन । ऐ हुस्न -ऐ -बेपरवाह तुझे । अपनी धुन में रहता हूँ। हम तेरे शहर में आये हैं मुसाफिर की तरह। हंगामा है क्यों बरपा थोड़ी सी। कैसी चली है अबके हवा। दिल की बात लबों तक ला कर। किया है प्यार जिसे। वह कभी मिल जाएँ तो। दिल में एक लहर सी उठी है अभी। ज़ख्म -ऐ -तन्हाई में खुसबू -ऐ -हिना किसकी थी। ये किसने कह दिया आखिर की छुप छुपा के पियो।

जगजीत सिंह: होठों से छूलो तुम मेरा गीत अमर कर दो जैसी मशहूर ग़ज़ल सभी ने सुनी होगी जो फिल्म प्रेम गीत में शामिल थी , इस ग़ज़ल को गाने वाले भारतीय ग़ज़ल सम्राट जगजीत सिंह पुरे विश्व में प्रसिद्ध हुए। इनके गीत ग़ज़ल फिल्मों और एल्बम में लिए गए। कुछ भजन भी इन्होने गाये। इनके गाये कुछ मधुर ग़ज़ल निम्न हैं।

वो काग़ज़ की कश्ती वो वारिश का पानी। तुम इतना जो मुस्कुरा रहे हो। कोई ये कैसे बताये की वो तनहा क्यों है। ज़िन्दगी से बड़ी सज़ा ही नहीं। प्यार मुझसे जो किया तुमने तो क्या पाओगी। झुकी झुकी सी नज़र।

पंकज उधास: गुजरात में जन्मे पंकज उधास जी ने हिंदी फिल्मों में लोकप्रिय गीत और ग़ज़ल दोनों गाईं उनके द्वारा गए हुए कुछ लोकप्रिय ग़ज़ल / गीत निम्न थे।

चांदी जैसा रंग है तेरा सोने जैसे बाल। चिट्ठी आयी है। जियें तो जियें कैसे बिन आपके। छुपाना भी नहीं आता।

भूपिंदर सिंह: अपनी अलग आवाज के लिए पहचाने जाने वाले भूपिंदर ने अनेक ग़ज़ल / गीत गाये जिनमे कुछ मशहूर निम्न हैं ।

दिल ढूंढ़ता है। नाम गुम जायेगा। एक अकेला इस शहर में। करोगे याद तो हर बात याद आएगी। कभी किसी को मुकम्मल जहाँ नहीं मिलता। जिंदगी जिंदगी मेरे घर आना। दो घडी बहला गयी परछाइयां।

मेहंदी हसन: मूलतः भारत में जन्मे मेहंदी हसन ने अनेक ग़ज़ल और गीत गाये जिनमे से प्रमुख निम्न हैं|

रंजिश ही सही। रफ्ता रफ्ता वो मेरी हस्ती का सामान हो गए। पत्ता पत्ता बूता बूता। तू मेरी ज़िदगी है।

तलत अज़ीज़: हैदराबाद, भारत में जन्मे तलत अज़ीज़ ने भी एक से बढ़कर एक ग़ज़ल प्रस्तुत की हैं जो अधिकांशतः हिंदी फिल्मों में शामिल की गयी हैं। उनकी गायी कुछ प्रमुख ग़ज़ल निम्न है।

ज़िन्दगी जब भी तेरी बज़्म में। फिर छिड़ी रात बात फूलों

की। आइना मुझसे मेरी। ना किसी की आँख का।

ग़ज़ल गायकों की सूचि लम्बी है और उसे एक साथ संकलित कर प्रस्तुत किया जाना संभव नहीं है फिर भी कुछ अन्य गायकों में निम्न सम्मिलित हैं।

चित्रा सिंह, फरीदा खानुम, बेगम अख्तर, लता मंगेशकर, मुहम्मद रफ़ी, मुन्नी बेगम, चन्दन दास, तलत महमूद इत्यादि।

अंत में ग़ज़ल के लेखकों / शायरों का जिक्र किया जाना भी जरूरी है। ग़ज़ल को अपनी कलम से लिखने वाले प्रमुख शायर और उनकी गायी प्रसिद्द ग़ज़ल निम्न हैं|

कैफ़ी आज़मी : तुम इतना जो मुस्कुरा रहे हो। झुकी झुकी सी नज़र।

हसरत मोहनी: चुपके चुपके रात दिन आंसू बहाना याद है

जावेद अख्तर: तुमको देखा तो ये ख्याल आया।

बशीर बद्र: ऐ हुस्न-ऐ-बेपरवाह तुझे, शबनम कहूं, शोला कहूं।

गुलज़ार: तुझसे नाराज़ नहीं ज़िन्दगी। तेरे बिना ज़िन्दगी से कोई। तुम आ गए हो। हज़ार राहें मुड़ के देखी।

क़तील सैफई : किया है प्यार जिसे हमने अजनबी की तरह।

नासिर काज़मी: दिल में एक लहर सी उठी है अभी। अपनी धुन में रहता हूँ।

दाग देहलवी: तुम्हारे खत में नया इक सलाम किस का था| ले चला जान मिरी रूठ के जाना तेरा।

मुज़फ्फर वारसी: ज़ख्मे-ऐ- तन्हाई में खुशबू - ऐ- हिना किसकी थी।

साहिर लुध्यानवी: कभी खुद पे कभी हालत पे रोना आया। मैं ज़िन्दगी का साथ निभाता चला गया।

इनके अतिरिक्त मिर्ज़ा ग़ालिब, आमिर खुसरो, निदा फ़ाज़ली, फ़िराक़ गोरखपुरी, अकबर इलाहाबादी, जिगर मोरादाबादी, राहत इन्दोरी और अनेक अन्य शायरों ने ग़ज़लें लिखी हैं एक से बढ़कर एक।

आजकल की भागदौड़ वाली ज़िन्दगी में जहाँ तेज़, धमाकेदार संगीत वाले गाने विभिन्न कार्यक्रमों में चलते हैं ऐसे में ग़ज़ल एक शांति प्रदान करने वाला धैर्यपर्वक सुनने वाला संगीत भी है। अनेक लोग इसे उदासी या गम का संगीत मानते हैं परन्तु ग़ज़ल सुनने वालों को इसका एक एक शेर अपनी वास्तिविक जिंदगी की अभिव्यक्ति प्रतीत होती है और वो इसमें मग्न होकर सुनते हैं। वैसे ग़ज़ल गायिकी भी आसान नहीं होती है | इसमें अधिकांशतः शास्त्रीय संगीत या अत्यंत उतार चढ़ाव होते हैं जो ग़ज़ल के प्रस्तुतीकरण में चार चाँद लगा देते हैं। मशहूर गायकों ने ग़ज़ल गायन में इसे बखूबी सम्मिलित किया है जो ग़ज़ल को और भी कर्णप्रिय बना देती है।

विभिन्न कार्यक्रमों, संस्थानों, होटलों इत्यादि में ग़ज़ल गायन भी सम्मिलित होता है और लोग इसको ध्यान से सुनते हैं और प्रशंसा करते हैं। अतः ग़ज़ल की अपनी एक अलग पहचान थी, है और हमेशा रहेगी।

राजस्थान के शायर हस्तीमल हस्ती की ये ग़ज़ल जो जगजीत सिंह जी के स्वर से सजी है, काफी लोकप्रिय हुई है|

प्यार का पहला ख़त लिखने में वक़्त तो लगता है
नए परिंदों को उड़ने में वक़्त तो लगता है
जिस्म की बात नहीं थी उन के दिल तक जाना था
लम्बी दूरी तय करने में वक़्त तो लगता है
गाँठ अगर लग जाए तो फिर रिश्ते हों या डोरी
लाख करें कोशिश खुलने में वक़्त तो लगता है
हम ने इलाज-ए-ज़ख़्म-ए-दिल तो ढूँड लिया लेकिन
गहरे ज़ख़्मों को भरने में वक़्त तो लगता है

और अंत में मिर्ज़ा ग़ालिब (आगरा, भारत) की ग़ज़ल

दिल-ए-नादाँ तुझे हुआ क्या है
आख़िर इस दर्द की दवा क्या है
मैं भी मुँह में ज़बान रखता हूँ
काश पूछो कि मुद्दआ' क्या है
हम को उन से वफ़ा की है उम्मीद
जो नहीं जानते वफ़ा क्या है
मैं ने माना कि कुछ नहीं 'ग़ालिब'
मुफ़्त हाथ आए तो बुरा क्या है।

विभिन्न तथ्य, जानकारी इंटरनेट के स्रोतों से ली गयी है जिनमे rekhta.org, विकिपीडिया, गूगल प्रमुख हैं

❐ **आचार्य**, संगणक विज्ञान

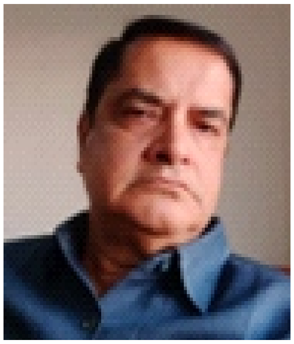

प्रो. प्रदीप शुक्ला

राज्य निर्माण में चंदूलाल चंद्राकर का योगदान

छत्तीसगढ़ आस्था की वह स्थली है, जहां के निवासी आज भी रतनपुर की माँ महामाया, डोंगरगढ़ की माँ बम्लेश्वरी, और दंतेवाड़ा की माँ दंतेश्वरी को अपना आराध्य देवी मानते हैं। प्राच्य सभ्यताओं की इस पावन-भूमि में सिंघनपुर, रामगढ़, गुंजी, सिरपुर, आरंग, पाली, भोरमदेव, चम्पारण, चित्रकूट, खल्लारी, खैरागढ़, मल्हार, अड़भार, दामाखेड़ा, तुरतुरिया, तालागांव, सिहावा, राजिम, गुप्तेश्वर, तुम्माण, बारसुर, और शिवरीनारायण सरीखे धार्मिक एवं सांस्कृतिक केंद्र अवस्थित है। छत्तीसगढ वही दक्षिण कोसल है, जिसे मर्यादा पुरूषोत्तम श्रीराम के ननिहाल होने का भी गौरव प्राप्त है। सदियों से यह अंचल ऋषि-मुनियों की तपोस्थली रही है। अगत्स्य ऋषि, महर्षि वाल्मीकि, श्री वल्लभाचार्य, गुरू घासीदास बाबा सहित अनेक महापुरूषों ने इस अंचल को सुशोभित एवं गौरवान्वित किया है। इतने विस्तृत और समृद्ध इतिहास को स्वयं में समेटे हुए 'धान के कटोरे' के नाम से विख्यात इस राज्य के निर्माण का भी एक इतिहास रहा है। पं. सुंदरलाल शर्मा ने छत्तीसगढ़ प्रांत की परिकल्पना करते हुए लिखा कि "नैसर्गिक मर्यादा भाव, वर्ग पहचान, सामाजिक भावना के मद्देनजर सर्वधर्म समभाव को ध्यान में रखते हुए राज्य निर्माण करना ही लोकहित में होगा।"

01 नवम्बर सन् 2000 को मध्य प्रदेश के दक्षिण-पूर्वी भाग के 16 जिलों से बना यह राज्य निर्माण के क्रम में भारत का 26वां राज्य है। औपनिवेशिक शासन काल के दौरान अंग्रेजों ने यहां के जंगलों और खनिज संपदाओ का भरपूर दोहन किया। आजादी के बाद उक्त क्षेत्र को मध्य प्रदेश में सम्मिलित कर दिया गया, लेकिन वस्तु स्थिति में ज्यादा परिवर्तन नही आया और यह क्षेत्र पिछड़ा का पिछड़ा बना रहा। पृथक छत्तीसगढ़ राज्य की आवाज वैसे तो मध्यप्रदेश के गठन के समय पर भी उठाई गई थी, क्योंकि भौगोलिक दृष्टि से मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल तक की

भौगोलिक दूरी एक ओर जहां कम नहीं की जा सकती थी, वहीं यह माना जा रहा था कि भोपाल तक छत्तीसगढ़ की आवाज कैसे पहुंचेगी। मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल से छत्तीसगढ़ की प्रशासनिक दूरी अधिक होने की वजह से नीतिगत फैसलो को लेने व उन्हें क्रियान्वित करने में भी देरी होती थी। हमारे माननीय नेताओं की उस समय की सांच सिर्फ सांच ही नहीं एक सत्य प्रमाणित हुआ, क्योंकि जो प्रगति छत्तीसगढ़ में होनी चाहिए थी, वह नहीं हुई और छत्तीसगढ़ पिछड़ा का पिछड़ा ही रह गया। यह वास्तविकता किसी से छिपी नहीं थी, लेकिन इस वास्तविकता का उचित स्थान पर उचित तरीके से एहसास दिलाना छत्तीसगढ़ के नेताओं के लिए एक चुनौती थी।

अपनी विजय यात्रा में हम अक्सर अपने संघर्षमय इतिहास को भी याद करते हैं। छत्तीसगढ़ राज्य गठित होने के उपरान्त इसके निर्माण हेतु किए गए आन्दोलन के इतिहास पर दृष्टिपात करें तो पता चलता है कि राज्य पुनर्गठन आयोग के कार्यकाल (1953-55) में पृथक छत्तीसगढ़ राज्य की मांग उठायी गयी थी, तब रायपुर के तत्कालीन विधायक ठाकुर प्यारेलाल सिंह ने एक बैठक बुलाई थी जिसमें क्रांतिकुमार भारती, मदन तिवारी, दशरथलाल चौबे, कमलनारायण शर्मा आदि नेतागण सम्मिलित हुए थे। ठाकुर साहब ने पृथक छत्तीसगढ़ राज्य की मांग हेतु मध्य प्रदेश विधानसभा में भी आवाज उठाई थी पर उनकी एक न सुनी गई, तब बाध्य होकर 28 जनवरी 1956 को राजनांदगांव में डॉ. खूबचंद बघेल जी की अध्यक्षता में छत्तीसगढ़ स्तरीय सर्वदलीय राजनैतिक सम्मेलन बुलाया गया और 29 जनवरी को छत्तीसगढ़ महासभा का गठन किया गया। इस सम्मेलन में बड़ी संख्या में संपूर्ण छत्तीसगढ़ से राजनैतिक, साहित्यिक, सामाजिक और सांस्कृतिक हस्तियां उपस्थित थे। इस आंदोलन को और अधिक बल देने के उद्देश्य से 25 सितम्बर 1967 ई. को खूबचंद बघेल द्वारा छत्तीसगढ़ भातृसंघ का भी गठन किया लेकिन सन् 1969 के बाद यह आंदोलन उग्र होने के बजाय कमजोर होता गया।

इस बीच आंदोलन को चलाने के लिए कई और संगठन भी बने। सन् 1972 में आदिवासियों के हृदय सम्राट लाल श्याम शाह गोंडवाना प्रदेश के नाम से इस मांग को विशाल रैली के माध्यम से उठाते रहे। अंततः सन् 1992 में सभी एक मंच से जुड़े। इस सर्वदलीय मंच के अध्यक्ष सर्वमान्य नेता चन्दूलाल चन्द्राकर को बनाया गया। अर्थात् इस आन्दोलन का नेतृत्व डॉ. खूबचंद बघेल के बाद चन्दूलाल चन्द्राकर जी के कंधों पर आ गया। सन् 1992 में अर्जुन्दा में पिछड़ा वर्ग सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें तत्कालीन केन्द्रीय मंत्री अर्जुन सिंह जी मुख्य अतिथि थे। अपने सारगर्भित उद्बोधन में चन्दूलाल चन्द्राकर ने पृथक छत्तीसगढ़ राज्य की आवश्यकता को बड़े तर्क पूर्ण ढ़ंग से प्रतिपादित किया। उनका स्पष्ट मत था कि मध्यप्रदेश में रहते हुए छत्तीसगढ़ का विकास नहीं हो सकता। उन्होंने बड़ी तत्परता पूर्वक 'छत्तीसगढ़ राज्य निर्माण सर्वदलीय मंच' गठित करके संघर्ष छेड़ दिया। उनका यह प्रयास मानो उचित समय पर उठाया गया उचित कदम था। छत्तीसगढ़ की जनता जैसे किसी सर्वमान्य समर्पित नेता की प्रतीक्षा कर रही हो। निःस्वार्थ भाव से आंदोलन शुरू करने के कारण वे छत्तीसगढ़ के सच्चे सेवक के रुप में उभरे।

पृथक छत्तीसगढ़ राज्य निर्माण की मांग नई नहीं थी, उसे गांधीवादी तौर तरीके से हासिल करने के लिए बनाई गई रणनीति नई थी, जिसमें चन्दूलाल चन्द्राकर को सफलता हासिल हुई। पृथक छत्तीसगढ़ राज्य के धीमे पड़े मांग को एक व्यवस्थित आन्दोलन का स्वरूप देकर 'छत्तीसगढ़ राज्य निर्माण सर्वदलीय मंच' का गठन किया तथा सभी राजनीतिक दलों के नेताओं को एक ही मंच में साथ लाया। कांग्रेस पार्टी के केयूर भूषण, समाजवादी पार्टी के श्री पुरूषोत्तम कौशिक, कम्युनिस्ट पार्टी के सुधीर मुखर्जी के अलावा दाऊ श्री वासुदेव चन्द्राकर, पंडित राजेंन्द्र प्रसाद शुक्ल, डॉ. केशव सिंह, ठाकुर रामगुलाम सिंह, श्री डी. पी. घृतलहरे, रणवीर शास्त्री, सरयूकांत झा, बालचंद कछवाहा, श्री हरि ठाकुर, रणवीर सिंह शास्त्री, अरविंद नेताम, मदन तिवारी जैसे व्यक्तित्व को सर्वदली मंच के भावनात्मक सदस्य बनाया। इन सभी की चिंगारी ने अग्नि प्रज्वलित कर छत्तीसगढ़ राज्य को जन्म दिया।

छत्तीसगढ़ राज्य आंदोलन की बागडोर सम्भालते हुए चन्दूलाल चन्द्राकर ने इस आंदोलन को जन आंदोलन में परिवर्तित कर गाँव-गाँव तक पहुंचाया और अहिंसक धरने एवं प्रदर्शन के माध्यम से अपनी आवाज को नई दिल्ली की सरकार तक पहुंचाने में कामयाब हुए। चन्दूलाल चन्द्राकर को जितना जन समर्थन

मिला उतना इस आन्दोलन को इससे पहले कभी नहीं मिला था। छत्तीसगढ़ राज्य निर्माण सर्वदलीय मंच के आव्हान पर 05 अक्टूबर 1993 को ''छत्तीसगढ़ महाबंद'' आन्दोलन चलाया गया। इस छत्तीसगढ़ महाबंद आन्दोलन को सभी राजनीतिक दलों तथा संस्थाओं ने तमाम मतभेदां को भूलाकर सहयोग तथा समर्थन प्रदान किया था। यह छत्तीसगढ़ में पहली बार संभव हुआ। चन्दूलाल जी के अजातशत्रु होने का यह एक ऐतिहासिक प्रमाण है। सबको एकजुट होते देखने के बाद वे आश्वस्त हो गये कि सबेरा होकर रहेगा। उन्होंने ओजस्वी उद्बोधन देते हुए कहे थे की ''छत्तीसगढ़ राज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है और हम इसे लेकर रहेंगे।'' 05 अक्टूबर छत्तीसगढ़ राज्य के लिए एक ऐतिहासिक दिन साबित हुआ। क्योंकि इस दिन गांवो से लेकर शहरों तक पृथक छत्तीसगढ़ राज्य निर्माण के समर्थन में अभूतपूर्व हड़ताल किया गया, छत्तीसगढ़ में कहीं एक दुकान तक नहीं खोली गई और छत्तीसगढ़ वासियों ने अपने संयम एवं संस्कृति का पूर्ण परिचय दिया। छत्तीसगढ़ राज्य निर्माण सर्वदलीय मंच के आव्हान पर हर वर्ग के लोगों ने स्वेच्छा से साथ दिया, कहीं कोई अप्रिय घटना नहीं हुई, कहीं एक पत्थर तक नहीं फेका गया। छत्तीसगढ़ महाबंद आन्दोलन की सफलता से पृथक छत्तीसगढ़ की आवाज पहली बार भोपाल तक पहुँची।

चन्दूलाल चन्द्राकर को इससे बहुत बल मिला। इस आन्दोलन के माध्यम से छत्तीसगढ़ की बहादुर जनता ने छत्तीसगढ़ राज्य के प्रति जो व्याकुलता और एकता दिखलायी थी, उसका दबाव इतना अधिक था कि सभी राजनैतिक दलों को अपने आगामी चुनावी घोषणा पत्रों में पृथक छत्तीसगढ़ राज्य निर्माण के मुद्दे को सम्मिलित करना पड़ा। चुनाव उपरांत श्री गोपाल परमार द्वारा छत्तीसगढ़ राज्य निर्माण हेतु एक अशासकीय संकल्प मध्य प्रदेश विधान सभा में लाया गया। जिसे चन्दूलाल चन्द्राकर जी के प्रभाव के चलते मुख्यमंत्री दिग्विजय सिंह जी ने सर्वसम्मति से पूरी उदारता और सम्मान के साथ पारित कराने का काम किया। परिणामस्वरुप 18 मार्च 1994 को मध्यप्रदेश विधानसभा में छत्तीसगढ़ राज्य निर्माण संबंधी प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हो गया। कुछ वर्षा बाद यही संकल्प छत्तीसगढ़ राज्य स्थापना का मूल आधार बना।

चन्दूलाल चन्द्राकर जी की स्पष्ट नीति, सबको साथ लेकर चलने का कौशल इस आन्दोलन के सफलता के प्रमुख कारण थे। उनकी स्मृति हमें कर्तव्य पथ पर चलने का सलीका सिखाती है। दिल्ली में जो धरना प्रदर्शन किए गए उसकी मूल में चन्दूलाल चन्द्रकार का ही चिन्तन था। छत्तीसगढ़, छत्तीसगढ़वासियों की आकांक्षाओं के लिए बने, छत्तीसगढ़ियों के स्वाभिमान की रक्षा के लिए बने यही चन्दूलाल जी ने अंतिम क्षणों तक चाहा। आज जब चन्दूलाल चन्द्राकर जी का छत्तीसगढ़ राज्य निर्माण का सपना साकार हो गया है उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करना हम सब छत्तीसगढ़वासियों का दायित्व है। इसके अलावा छत्तीसगढ़ राज्य निर्माण सर्वदलीय मंच से जुड़े हुए सभी लोगो को भी हमें नमन करना चाहिए।

अंत में चन्दूलाल चन्द्राकर जी पर दो पंक्ति -

किसी को हो न सका उसके कद का अंदाज,
वो हिमालय था मगर सर झुकाये बैठा था।

❒ **आचार्य**, इतिहास

प्रो. अनुपमा सक्सेना

गुरु घासीदास बाबा और महिला सशक्तीकरण

गुरु घासीदास जी का जन्म 18 दिसम्बर 1756 को रायपुर जिले के गिरोधपुरी ग्राम में हुआ था और देहावसान वर्ष 1836 में हुआ था। यह समय हमारे देश और समाज के लिए राजनीतिक गुलामी और शोषण का समय था। हमारा समाज जाति के आधार पर विभाजित था तथा धार्मिक कुरीतियों और अंधविश्वासों से जकड़ा हुआ था। ऐसे समय में छत्तीसगढ़ में गुरु घासीदास जी के रूप में हमें एक ऐसा युवा मिला जिसने अपने समय की चुनौतियों को न केवल समझा अपितु उनका सफलता पूर्वक सामना करने का दृढ़ निश्चय भी किया। उनमे से एक चुनौती जो आज के समय में भी उतनी ही बड़ी चुनौती है, वह थी समाज में महिलाओं के साथ होने वाला असमानता का व्यवहार। आज भी पूरे विश्व में महिलाएं सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक पक्षों में बराबरी के हक़ के लिए संघर्ष कर रहीं हैं। गुरु घासीदास जी के समय में यह संघर्ष और भी कठिन था. उस समय में गुरु घासीदास जी ने 'मनखे मनखे एक समान' का सन्देश देकर समाज में किसी भी वर्ग जिसमे महिलाएं भी सम्मिलित थीं, उनके लिए बराबरी के हक़ का आवाहन किया। ' equality before law ' का सिद्धांत जो कि आज की प्रजातांत्रिक और समता मूलक व्यवस्थाओं का आधार सिद्धांत है, गुरु घासीदास जी की वाणी में वह आज से लगभग 250 वर्ष पहले ही समाहित हो गया था - 'नियम सब्बो बर बराबर होथे'. उनके ये उपदेश युगों से पीड़ित, प्रताड़ित, शोषित वर्ग के लोगों को जिनमे महिलाएं भी शामिल हैं, समाज में प्रतिष्ठा दिलाने की उनकी भावना और प्रयासों को व्यक्त करते हैं.

गुरु घासीदास जी के जीवन में महिलाओं का कितना महत्वपूर्ण स्थान रहा यह उनके जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना से स्पष्ट होता है. परिस्थितिवश उन्होंने गिरोधपुरी को छोड़ने का निश्चय किया और अपने परिवार को साथ लेकर सामान बैलगाड़ी पर लादकर तथा अपने कुछ अनुयायिओं सहित गिरौद से रायपुर की और चल दिए। रायपुर से 56 किलोमीटर पहले उत्तरपूर्व में स्थित पलारी के पास भण्डार नामक गांव में एक लोहारिन ने उन्हें आग्रहपूर्वक रोक लिया। उसकी श्रद्धा और प्रेम को देखकर गुरु जी ने वहीँ रुकने और भण्डार गांव को ही अपनी कर्मस्थली बनाने का निर्णय कर लिया। उन्होंने अपने अनुयायियों के साथ वहां सतनाम धाम की स्थापना करने का विचार किया और देखते देखते भण्डार गाँव में एक विशाल भवन बनकर तैयार हो गया। गुरु घासीदास जी यहां बैठकर अपने अनुयायिओं को उपदेश देते थे। यही गाँव आज भंडारपुरी के नाम से जाना जाता है और सतनाम समाज का प्रमुख तीर्थ है। यहां स्थित भवन को गुरु गद्दी के रूप में भी जाना जाता है.

गुरु घासीदास जी के जीवन का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि उन्होंने समाज सुधार , और समाज के आध्यात्मिक मार्गदर्शन के लिए गृहस्थाश्रम के मार्ग को चुना जिसमे पत्नी पति की इस यात्रा में सहधर्मिणी और बराबरी की सहचर होती है. उनके जिन उपदेशों को डॉक्यूमेंट किया गया है उनमे भावना निरंतर परिलक्षित होती है।

दो से दुनिया है बने , ऋण धन में पहचान,
प्रकृति रूप दो अंग हैं , नर नारी में जान।
नर नारी दो पहिया , गति मान जग पार,
गृहस्थ मोह ममता श्रम कर्म कुछ भार।

उनके सात अमृत वचनो में कई ऐसे वचन हैं जिनमे ऐसी सामाजिक कुरीतियों को दूर करने पर जोर दिया गया जो महिलाओं के जीवन को आज भी नकारात्मक रूप से प्रभावित करती हैं। जैसे 'दारू ना पीना', 'धूम्रपान नहीं करना', 'जुआ नहीं खेलना', आदि। उन्होंने अपने उपदेशों में हिंसा का विरोध किया , परस्त्रीगमन का विरोध किया। उन्होंने समाज में व्याप्त महिला विरोधी कुरीतियों का विरोध किया जैसे बहु विवाह का , सती प्रथा का , दहेज़ प्रथा का। उन्होंने विधवा विवाह को प्रोत्साहन दिया। उनका मानना था कि नारी भोग की वस्तु नहीं है.

महिलाओं के हित के लिए गुरु घासीदास जी का योगदान मात्र समाज में व्याप्त नकारात्मक कुरीतियों को समाप्त करने तक ही सीमित नहीं था उन्होंने अनेक ऐसे विचार व्यक्त किये और अपने अनुयायिओं को अनेक ऐसे सकारात्मक कार्य करने के लिए प्रेरित किया जिससे समाज के वंचित वर्ग जिसमे महिलाएं भी शामिल हैं , को आगे बढ़ने और बराबरी हासिल करने के अवसर मिल सकते हैं. जैसे उन्होंने सार्वजनिक शिक्षा पर अत्यधिक जोर दिया। सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था ही समाज के वंचित वर्ग की शिक्षा तक पहुँच सुनिश्चित कर सकती है. उन्होंने आवाहन किया ' पढ़ो लिखो और एकजुट होओ ' . आगे चलकर डाक्टर भीम राव आंबेडकर ने भी शिक्षा की महत्ता के बारे में कहा था , ' शिक्षा शेरनी का दूध है , जो पीता है , वह दहाड़ता है।' शिक्षा की शक्ति और संगठन की शक्ति आज भी महिला सशक्तिकरण के महत्वपूर्ण माध्यम हैं। गुरु घासीदास जी ने इन दोनों की महत्ता को समझा और प्रचारित किया. वे कहते हैं कि ' जब तक तुम इन दोनों की महत्ता को नहीं समझोगे , खुद को भाग्य के भरोसे छोड़कर , कर्म करके आर्थिक रूप से मजबूत नहीं बनोगे , तब तक भूख , गरीबी , तंगहाली , बदहाली और शोषण की जिंदगी से उबार पाना संभव नहीं है.' उनके ये कथन समानता की चाह रखने वाली महिलाओं के लिए प्रेरणास्पद हैं.

महिला सशक्तिकरण की दिशा में गुरु घासीदास जी का सबसे महत्वपूर्ण योगदान छत्तीसगढ़ और उसके आस पास के क्षेत्रों में व्याप्त टोनही प्रथा का विरोध और उसके उन्मूलन के प्रयास रहे हैं. आज भी इन क्षेत्रों में टोनही की कुप्रथा प्रचलित है. जिसमे गाँव में कोई भी आपदा आने पर किसी महिला को टोनही की रूप में चिन्हित कर लिया जाता है और उसे पीट पीट कर मार डाला जाता है। यह प्रथा उस समय के छत्तीसगढ़ में अत्यंत हृदय विदारक रूप में प्रचलित थी. मध्यप्रदेश हिंदी ग्रन्थ अकादेमी से प्रकाशित

पुस्तक में डाक्टर हीरालाल शुक्ल लिखते हैं

'इन दिनों मंडल से लेकर पूर्वी घाट तक वनांचल प्रदेश टोनही से इतना अधिक भरा हुआ था कि कोई भी समझदार माता पिता अपनी पुत्री का विवाह उस परिवार में नहीं करना चाहते थे, जहाँ के पारिवारिक सदस्यों में से कोई एक ननद टोनही ना हो'

टोनही प्रथा पर विश्वास के कारन औरतों को को सभी बुराइयों की जड़ माना जाता था। गुरु घासीदास जी ने इस प्रथा का पुरजोर विरोध किया और अपने अनुयायिओं का आवाहन किया कि वे इस प्रथा को समाप्त कर महिलाओं को अमानवीय अत्याचार से बचाएं. भारत के अनेक क्षेत्रों में यह कुप्रथा आज भी है। छत्तीसगढ़ में भी इस प्रथा के विरुद्ध पहला कानून 2005 में ही बन पाया। और गुरु घासीदास जी के रूप में एक प्रगतिशील विचारों वाला युवा आज से 250 वर्ष पूर्व इस प्रथा का विरोध करने का सहस कर रहा था. यह एक प्रेरणदायी तथ्य है.

गुरु घासीदास जी के उपदेशों में मानवता, समानता , प्रेम , विश्व बंधुत्व , विश्व कल्याण के सार्वभौमिक मानवीय मूल्य मिलते हैं। एक बेहतर विश्व बनाने के लिए उनके विचारों की आज भी प्रसंगिकता है । गुरु घासीदास जी के व्यक्तित्व और कृतित्व के बारे में उपरोक्त तथ्यों के आधार पर यह कहना उचित ही होगा कि छत्तीसगढ़ में वे महिला सशक्तिकरण के बार में प्रयास करने वाले सबसे महत्वपूर्ण समाज सुधारकों और विचारकों में से एक हैं. उस समय के बेहद अमानवीय प्रथाओं और सती प्रथा के विरुद्ध उन्होंने सशक्त प्रयास किये। वे आज भी हमारे लिए प्रेरणादायी हैं.

सन्दर्भ :

- पुनीराम, गुरूजी , 'सतनाम सृष्टि' मानव कर्म सिद्धांत - भाग 3 , 2008
- शुक्ल, हीरालाल , 'गुरु घासीदास, संघर्ष, समन्वय और सिद्धांत' (1756-1850), मध्यप्रदेश हिंदी ग्रन्थ अकादमी, 1995
- सोनी, जे आर, 'सतनाम पोथी ', गुरु घासीदास साहित्य एवम संस्कृति अकादमी , रायपुर , (छ. ग.) 2009

❒ **आचार्य**, राजनीति विज्ञान

प्रो. दिनेश कुमार मिश्रा

संगीत से चिकित्सा : प्राकृतिक उपाय

परिचय

संगीत प्राचीन काल से ही मानव जीवन का हिस्सा रहा है। भारतीय संस्कृति में संगीत का एक पवित्र और विशेष स्थान है। यह न केवल हमारे मनोरंजन का साधन है, बल्कि मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य को सुधारने में भी उपयोगी है। **संगीत चिकित्सा** (Music Therapy) आज एक उभरता हुआ क्षेत्र है, जिसका उपयोग मानसिक तनाव, शारीरिक दर्द, और गंभीर बीमारियों के प्रबंधन में किया जा रहा है। भारतीय शास्त्रीय संगीत में मौजूद राग और धुनें विशेष रूप से चिकित्सा में उपयोगी मानी जाती हैं।

संगीत चिकित्सा क्या है?

संगीत चिकित्सा एक वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति है, जिसमें प्रशिक्षित चिकित्सक द्वारा संगीत का उपयोग रोगियों की शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक समस्याओं को ठीक करने के लिए किया जाता है। इसमें संगीत सुनने, गाने, वाद्य यंत्र बजाने और संगीत से संबंधित अन्य गतिविधियों को शामिल किया जाता है।

इस चिकित्सा में संगीत के स्वर, लय और धुनें मस्तिष्क और शरीर के विभिन्न हिस्सों पर सकारात्मक प्रभाव डालती हैं। भारतीय शास्त्रीय संगीत में **रागों** की संरचना इस उद्देश्य के लिए बेहद प्रभावी मानी जाती है।

संगीत चिकित्सा के लाभ -संगीत चिकित्सा रोग प्रबंधन के विभिन्न पहलुओं में सहायक होती है:

1. **तनाव और चिंता का प्रबंधन** - शांत और धीमे संगीत से मन और मस्तिष्क को शांति मिलती है। **राग यमन** और **राग दरबारी कन्हड़ा** जैसे राग मस्तिष्क में तनाव को कम करने और शांति प्रदान करने में सहायक होते हैं।
2. **नींद विकार (अनिद्रा) का समाधान** - अनिद्रा से पीड़ित लोगों के लिए राग **भूपाली** और राग **कल्याण** सुनना लाभदायक होता है। ये राग मानसिक शांति देकर अच्छी नींद लाने में मदद करते हैं।
3. **दर्द प्रबंधन** - कैंसर, सर्जरी के बाद या पुरानी बीमारियों के

कारण होने वाले दर्द में संगीत चिकित्सा उपयोगी होती है। शोध में पाया गया है कि राग **पूरिया** और राग **तोड़ी** से दर्द की अनुभूति कम हो सकती है।

4. **हृदय स्वास्थ्य में सुधार** - धीमी लय वाले संगीत से हृदय की धड़कन स्थिर होती है और रक्तचाप नियंत्रित रहता है। राग **बागेश्री** और राग **मियां की मल्हार** हृदय रोगियों के लिए विशेष रूप से फायदेमंद माने गए हैं।
5. **मस्तिष्क विकारों का प्रबंधन** - अल्ज़ाइमर, डिमेंशिया और पार्किंसन्स जैसी समस्याओं में संगीत मस्तिष्क की कार्यक्षमता को बढ़ाने और स्मरण शक्ति सुधारने में मदद करता है।
6. **डिप्रेशन और मानसिक स्वास्थ्यन**- डिप्रेशन और PTSD जैसी समस्याओं में राग **अहीर भैरव** और राग **दरबारी कान्हड़ा** सकारात्मक प्रभाव डालते हैं। ये राग मानसिक संतुलन बनाए रखने और आत्मविश्वास बढ़ाने में मदद करते हैं।

भारतीय शास्त्रीय संगीत के राग और उनका प्रभाव

भारतीय संगीत में रागों का निर्माण विशेष स्वर और लय के आधार पर किया गया है, जो हमारे शरीर और मस्तिष्क पर अद्भुत प्रभाव डालते हैं। नीचे कुछ राग और उनके स्वास्थ्य लाभ दिए गए हैं:

रोग प्रबंधन में संगीत चिकित्सा के व्यावहारिक

उदाहरण-

1. **कैंसर रोगियों के लिए**- कैंसर के इलाज के दौरान कीमोथेरेपी और रेडियोथेरेपी के कारण होने वाले दर्द और तनाव को कम करने के लिए शांत और धीमी गति के राग सुनाए जाते हैं।
2. **ऑटिज्म और एडीएचडी में** - बच्चों में ऑटिज्म और ADHD (Attention Deficit Hyperactivity Disorder) के प्रबंधन में राग **भैरवी** और **यमन** का उपयोग किया जाता है। ये राग बच्चों को शांत और एकाग्र बनाए रखने में मदद करते हैं।
3. **मनोवैज्ञानिक समस्याओं में** - मानसिक विकारों जैसे डिप्रेशन और चिंता विकारों के इलाज में संगीत चिकित्सक राग **मल्हार** और **पटदीप** का उपयोग करते हैं, जो मन को शांत रखते हैं।

राग का नाम	स्वास्थ्य पर प्रभाव
राग यमन	- तनाव को कम करता है और मन को शांत करता है।
राग भूपाली	- नींद विकारों के समाधान में सहायक।
राग दरबारी कन्हड़ा	- मानसिक तनाव और अवसाद को कम करता है।
राग तोड़ी	- दर्द और सिरदर्द को कम करने में मदद करता है।
राग बागेश्री	- हृदय की धड़कन और रक्तचाप को स्थिर करता है।
राग मियां की मल्हार	- मन को तरोताजा करता है और थकान दूर करता है।
राग दीपक	- पाचन तंत्र को सुधारता है और भूख बढ़ाता है।
राग शिवरंजिनी	- मानसिक शांति और भावनात्मक स्थिरता प्रदान करता है।

4. **हृदय रोगों में** -हृदय रोगियों के लिए धीमे और मधुर राग जैसे **बागेश्री** और **तोड़ी** का उपयोग किया जाता है, जो रक्तचाप को नियंत्रित रखते हैं।

संगीत चिकित्सा कैसे अपनाएं?

1. **प्रशिक्षित चिकित्सक की सहायता लें:** किसी विशेषज्ञ से संपर्क करें, जो आपके लिए सही रागों का चयन कर सके।
2. **संगीत सुनने की आदत डालें:** दिन में 15-20 मिनट तक शांत और उपचारात्मक संगीत सुनें।
3. **संगीत के साथ ध्यान और योग करें:** धीमे और मधुर रागों के साथ ध्यान लगाने से दिमाग शांत होता है।
4. **वाद्य यंत्र बजाना सीखें:** जैसे बांसुरी, सितार या हारमोनियम बजाना भी संगीत चिकित्सा का हिस्सा बन सकता है।

निष्कर्ष -

संगीत चिकित्सा एक प्राचीन और प्रभावी पद्धति है, जो आज के तनावपूर्ण जीवन में मानसिक और शारीरिक समस्याओं के समाधान का एक प्राकृतिक तरीका प्रस्तुत करती है। भारतीय शास्त्रीय संगीत के राग न केवल मनोरंजन करते हैं, बल्कि स्वास्थ्य को भी सुधारने में सहायक होते हैं। नियमित रूप से संगीत का उपयोग जीवनशैली में शामिल करने से रोगों को प्रबंधित करना आसान हो सकता है और जीवन में शांति और संतोष प्राप्त किया जा सकता है।

❐ **आचार्य**, भैषजिक विज्ञान

प्रो. गौरी त्रिपाठी

साहित्य के बदलते सरोकार और अँधा युग

धर्मवीर भारती की नाट्यकृति "अंधायुग" महाभारत के मिथक पर आधारित एक ऐसी रचना है जिसमें द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद का यथार्थ और आधुनिक भारतीय समाज की बहुस्तरीय विडंबनाएं और खंडित जीवन के चित्र दिखाई देते हैं।इस कृति में नायकत्व का स्खलन, अर्धसत्य और अनास्था का प्रबल स्वर सुनाई देता है।यहां इस कृति के माध्यम से हम अपने समय को पढ़ने की चेष्टा कर रहे हैं।

धर्मवीर भारती अपने समय के एक ऐसे लेखक के रूप में जाने जाते हैं जिसने साहित्य की चाहे जिस विधा में अपनी लेखनी चलाई उसी में उन्होंने वह ऊंचाई प्राप्त कर ली जो उस विधा के शीर्षस्थ लोगों को प्राप्त थी।"गुनाहों का देवता" और "सूरज का सातवां घोड़ा" उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं।"कनुप्रिया" उनकी रोमैंटिक भाव धारा की प्रसिद्ध कविता है।उन्होंने निबंध भी लिखे।धर्मयुग का सम्पादन करते हुए उन्होंने साहित्यिक पत्रकारिता को जिस ऊंचाई पर खड़ा कर दिया, वहां तक दुबारा जा सकना असंभव हो गया। गीत नाट्य के क्षेत्र में "अंधायुग" उनकी कालजयी रचना है जिसका मुख्य स्वर युद्ध का विरोध है। अज्ञेय और रामदरस मिश्र के अलावा लगभग हिंदी के सभी आलोचकों ने अपने-अपने तरीके से उनका मूल्यांकन किया है।विश्व विद्यालयों में उनके कृतित्व को लेकर सैकड़ों शोधग्रंथ लिखे जा चके हैं।वर्तमान संदर्भो में "अंधायुग" को पढ़ने तथा समझने की एक विनम्र कोशिश का परिणाम है यह शोध-पत्र।

आज विश्व मानवता के समक्ष लगातार युद्ध का संकट बना हुआ है।अंधायुग इसी युद्ध की निस्सारता का महावृत्तान्त प्रस्तुत कर रहा है।युद्ध की विभीषिका में न सिर्फ कौरव पक्ष पराजित होता है, बल्कि वह जो विजेता था, पांडव दल, उसने भी खोया है।युद्ध में मनुष्य के सारे सामाजिक और राजनीतिक आदर्श खो जाते हैं।सत्ता का अहंकार मानव जीवन के उज्ज्वल पक्षों को कलंकित करता है। धृतराष्ट्र का अंधापन सत्ता के अंधेपन में तब्दील होता जाता है।अश्वत्थामा अमरत्व का वरदान पाने के बावजूद अपने

घायल और बदबूदार जख्मों के साथ छिपा- छिपा घूमता है।यह है आज के आतंकवाद की नियति और त्रासदी।इन्ही का विश्लेषण विवेचन इस शोधपत्र का मूल उद्देश्य है।

साहित्य के समाजशास्त्रीय आलोचना को आदर्श आलोचना मानते हुए इस शोध-पत्र में मैंने आलोचनात्मक अनुसंधान पद्धति, विश्लेषणात्मक अनुसंधान पद्धति और तुलनात्मक अनुसंधान पद्धतियों का सहारा लिया है।आधार ग्रंथ के अलावा तत्कालीन समय संदर्भों में लिखी गयी अन्य कृतियों की भी मदद ली गयी है।

अंधायुग मूलतः युद्ध के विरोध में लिखी गयी एक नाट्य रचना है जिसके के केंद्र में अर्धसत्य है, और परिणाम में प्रभु की मृत्यु। प्रभु की मृत्यु का तात्पर्य सिर्फ कृष्ण की मृत्यु से नही ,बल्कि उन समस्त आदर्शों,मानवीय मूल्यों और उनकी अर्जित उदात्त संभावनाओं की मृत्यु से है।धृतराष्ट्र या गांधारी जो स्वयं जीवन भर आंखों पर पट्टी बांधे अन्याय का अनिच्छित और अकर्मक पालन करते रहे,वे आज विवश हैं। जिनमें दंड देने की शक्ति थी, वे लाचार होकर शाप देते हैं।विजय जिसे इतिहास में तरह तरह से गौरवान्वित किया जाता रहा है उसे इस कृति में एक क्रमिक आत्महत्या की तरह दर्शाया गया है।"**सच है, वीरता जब भागती है तो उसके पैरों से राजनीतिक छल-छद्म की धूल उड़ती है ।"1**

महाभारत का युद्ध जिस कुरुक्षेत्र के मैदान में लड़ा गया था क्रमशःवह उसी चौसर की रंगशाला का विस्तार बनने लगता है, जिसकी शुरुआत कौरव की ओर से शकुनि ने की थी।फिर तो जैसा मैंने ऊपर ध्रुवस्वामिनी के हवाले कहा भी है, उस युद्धभूमि में और उसके बाहर भी छल- प्रपंच ही नाना रूपों में दिखाई देने लगता है। अंधायुग को सिर्फ नाट्यकला , उसकी प्रस्तुति की दृष्टि से नहीं पढ़ा जा सकता है।जिस समय यह महानतम कृति रची गयी है, उस समय साहित्य की अन्य दूसरी विधाओं, मसलन, कविता, उपन्यास आदि में भी शायद ही कोई ऐसी कृति रची गयी हो जिसका इतना व्यापक और सघन प्रभाव रहा हो।

प्रेमचंद ने अपने युग की विडंबनाओं के चित्रण हेतु जिस यथार्थवाद की नींव डाली,और उसे आदर्शोन्मुख यथार्थवाद से आलोचनात्मक यथार्थवाद की मंजिल तक ले गए थे, उसमें जगह-जगह से टूटते- दरकते भारतीय किसानों और गांवों की कहानी तो है, लेकिन वह युग सिर्फ गांवों और किसानों के टूटने का ही नहीं था, बल्कि वह मनुष्य और मनुष्यता पर गहराते जा रहे भयानक संकट का दौर था। जिसके बारे में भारती जी लिखते हैं-

"उस भविष्य में / धर्म - अर्थ ह्रासोन्मुख होंगेक्षय होगा धीरे-धीरे सारी धरती का।"

"सत्ता होगी उनकी/ जिनकी पूंजी होगी।जिनके नकली चेहरे होंगे/केवल उन्हें महत्त्व मिलेगा।"2

प्रेमचंद का यथार्थ भारतीय गांवों का यथार्थ था।खेती और किसानी के उजड़ने और क्रमशः किसानों के विपन्न होने के विवरण थे। लेकिन अंधा युग जिस यथार्थ को लेकर लिखा गया है,उसमें पूंजी के प्रभुत्व वाली सभ्यता से उपजे शासक वर्गों की सत्तालोलुपता है।युद्ध में घायल और मरणासन्न मानव नियति के प्रश्न हैं।यह सब आज हमारे सामने रोज-रोज घटित हो रहा है। यह सुदूर इतिहास में खड़े मनुष्य की कहानी नहीं, बल्कि ऐसा लगता मानो कोई स्वप्न कथा चल रही हो।एक फैंटेसी के अंधेरे वृत्त में विजय तलाशते आज हम जिस युग में जी रहे हैं, यह सब वही हमारे बेहद करीब,चिर-परिचित और आस पास फैले संकट का एकदम जाना पहचाना यथार्थ है।सतह पर फैले- तैरते इन घटनाओं के विवरण और चित्रण से पकड़ में आ सकने वाला यह दृश्य यथार्थ है ही नहीं। उस कल्पनातीत यथार्थ को दुःस्वप्नों और फैंटेसी के माध्यम से ही चित्रित किया जा सकता है।

अंधायुग 1955 में प्रकाशित हुआ था, लेकिन बहुत सीधे और सपाट ढंग से देखे तो 1955 का यह समय हिंदी कहानी या कविता में नई कहानी या नई कविता का समय था, जिसमें भारत की नई - नई आजादी, और नेहरू युग का रोमानी सम्मोहन था। ऐसे में हमें जरूर अंधायुग के यथार्थ की ऐतिहासिक संगति खोजनी पड़ेगी। यथार्थ की उस ऐतिहासिक संगति को जो एक लंबे कालखंड से रचनाकार के भीतर दुःस्वप्नों की भयानक छाया बनकर उमड़ - घुमड़ रही हो, जिसके चित्रण के लिए रचनाकार महाभारत के अवसान काल को चुनता है।महाभारत का वह वृत्तांत मिथक बनता है, और शुरू होती है यथार्थ की फैंटेसी।

प्रथम विश्वयुद्ध फिर दो दशक बाद ही द्वितीय विश्वयुद्ध।हिरोशिमा और नागासाकी की विभीषिका रचनाकार के मनोमस्तिष्क को महाभारत के महाविनाश की याद दिलाता रहता है।एक बार यह समझ कर आप इन सबको झुठला भी दें कि हमारे देश के

मानसपटल पर सुदूर यूरोप में घटने वाली इन घटनाओं का कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नही था।हमारे देश को तो अभी नई- नई आजादी मिली थी।नये भारत के निर्माण का स्वप्न देखता देश रोमैंटिक भावावेग में था।लेकिन काश यह सब इतना आसान होता। ताजा-ताजा हुए भारत विभाजन के पहले की अकल्पनीय बर्बरता,बलात्कार,भयानक कत्लेआम आदि से लहूलुहान गृह युद्ध के जख्म इतने आसान न थे जिसमें यह तय किया जा सके कि आजादी का उल्लास बड़ा था, या विभाजन के जख्म ज्यादा गहरे थे? हमारे दृश्यपटल पर दहशत में डूबी नई दिल्ली थी, और हमारी स्मृतियों के मानसपटल पर हस्तिनापुर का करुण विलाप गूंज रहा था।वह समूचा युग अपने भीतर अश्वत्थामा के प्रतिशोध और अंधेरे को जी रहा था।युद्ध से पहले सब अपने को नायक ही समझ रहे थे।सब अपने आप को भाग्य विधाता ओर देवता समझ रहे थे लेकिनदो दशक पहले जैसा कि कामायनी का मनु कह रहा था-

"देव न थे हम,और न ये हैं,सब परिवर्तन के पुतले।
हां कि गर्व रथ में तुरंग सा,जो चाहे जितना जुत ले।"4

दो -दो विश्वयुद्धों और नाना किस्म के गृहयुद्ध झेलता आज का मनुष्य जब तीसरे विश्वयुद्ध के कगार पर खड़ा है, तब हम विश्वासपूर्ण ढंग से कह सकते हैं कि युद्ध की निस्सारता पर न सिर्फ हिंदी में बल्कि विश्वसाहित्य में अंधायुग जैसी मार्मिक और प्रभाव शाली कृतियाँ कम लिखी गई हैं ।यह हमारे आधुनिक जीवन के यथार्थ पर आधारित एक महत्त्वपूर्ण मिथकीय कृति है।

मिथक लोक प्रचलित कोई घटना,कोई आख्यान,कोई चरित्र लोक जीवन के बीच आकर जब ,अलग- अलग संदर्भों में उद्धरित होने लगता है तो वह किसी यथार्थ ,किसी जीवन संदर्भ के लिए मिथक बन जाता है।प्रेमचंद ने जिस यथार्थवाद की शुरुआत की थी वह यथार्थ चित्रण की एक शैली थी ।लगभग उसी तरह प्रतीक,फैंटेसी,और मिथक भी यथार्थ चित्रण की ही अलग-अलग शैली हैं।उत्तर प्रेमचंद युग में चाहे गद्य लेखन की परंपरा हो या काव्य की, मिथकीय कृतियाँ प्रचुर मात्रा में रची गयीं, जिसका प्रारम्भ खुद प्रेमचंद के ही समकालीन छायावाद में प्रसाद जी ने अपनी महाकाव्यात्मक कृति कामायनी से की थी।कामायनी पौराणिक आख्यान की कोई नयी प्रस्तुति मात्र नहीं है।उसमें आधुनिक जीवन संदर्भ इतने गहरे और इतने व्यापक हैं कि वह आधुनिक मानव की कहानी बन गयी है।उसमें विश्व सभ्यता की समीक्षा है। उसमें आधुनिक प्रजातंत्र की विडंबनाओं, श्रम विभाजन और वर्ग संघर्ष की त्रासदियों को प्रभावशाली ढंग से उकेरा गया है। इन सारी समस्याओं का संबंध हमारे आज के समय से है।

इसी दौर में महाभारत के आख्यान को लेकर विभिन्न भारतीय भाषाओं के साथ ही हिंदी में कई महत्त्वपूर्ण कृतियाँ रची गयीं। मराठी में शिवाजी सावंत ने कर्ण के चरित्र को लेकर" मृत्युंजय " बंगला में प्रमनाथविशी ने कृष्ण की मृत्यु को केंद्र में रखकर "पूर्णावतार"जैसी कालजयी कृतियाँ लिखी हैं।हिंदी में राम कथा को केंद्र में रखकर नरेश मेहता ने "संशय की एक रात" तथा रामधारी सिंह दिनकर ने "कुरुक्षेत्र" और धर्मवीर भारती ने विवेच्य कृति "अंधायुग" की रचना की है।अंधायुग और कुरुक्षेत्र दोनों युद्ध के विरोध में लिखे गए काव्य है।लेकिन दोनों का स्वर बहुत भिन्न है।दिनकर युद्ध को एक अनिवार्य ट्रेजडी की तरह देखते है, तो धर्मवीर भारती उसे सिर्फ पशुता के प्रसार और अर्धसत्य के विस्तार में मानव जीवन पर पीब और सड़ांध भरे रिसते जख्म की तरह देखते हैं।

कुरुक्षेत्र की भूमिका में दिनकर ने लिखा भी है-**"कुरुक्षेत्र की रचना भगवान व्यास केअनुकरण पर नहीं हुई है और न महाभारत को दुहराना ही मेरा उद्देश्य है।×××× ××× मैं जरा भी दावा नहीं करता कि कुरुक्षेत्र के भीष्म और युधिष्ठिर ठीक-ठीक महाभारत के ही युधिष्ठिर और भीष्म हैं।"**5

इस तरह हम देखते हैं कि उस कालावधि में जब पूरी दुनिया विश्वयुद्धों की आशंकाग्रस्त छाया में जी रही थी, तब उसके सपनों,उसके भय,उसकी आशंकाओं को उनके रचनाकार मिथकों के माध्यम से चित्रित कर रहे थे। ये मिथक समय और युग के यथार्थ को प्रभावशाली ढंग से चित्रित कर रहे थे।

पुरानी सामंती व्यवस्था में धीरोदात्त नायकों को केंद्र में रखकर महाकाव्य रचे जाते थे। मनुष्य का प्रेम , उसकी उदारता, उसके चरित्र की गरिमा और वैसे ही उसके गरिमामय संबंध इन महाकाव्यों के विषय होते थे।न्याय और अन्याय का सीधा सरल पक्ष होता था।महाभारत की कहानी और उसका कथानक इस आधुनिक कृति "अंधायुग" का मेरुदंड है,इसमें कोई नायक नहीं

है।न युधिष्ठिर, न कृष्ण।सब अर्धसत्य के शापित हैं।

महाभारत की कहानी में युधिष्ठिर रणनीति के तहत एक अर्धसत्य रचते हैं-"अश्वत्थामा नरो मरो वा कुंजरो।" और यही अर्धसत्य अंधायुग की क्रूर नियति बन जाता है।सारे के सारे चरित्र जैसे इसी की उपासना में लीन होकर युद्धोपरांत बची खुची मनुष्यता को खोते जाते हैं।सबमें एक वीभत्स और बर्बर पशुता प्रसार भरता जाता है।

अंधायुग के निहितार्थ की पहचान करने और उसे विश्लेषित करने के लिए यह आवश्यक है कि इस नाट्यकृति के प्रमुख चरित्रों और उनके कथनों को ध्यान से सुना जाय।एक रचनाकार अपने चरित्रों के कथन-उपकथन के माध्यम से ही अपने विजन को स्पष्ट करता है, अपनी बात रखता है। अंधायुग को बार -बार पढ़ने के बाद मुझे जो चरित्र सबसे प्रभाव शाली लगे हैं उनका परिचय दे देना चाहती हूँ।जाहिर है ये सारे के सारे चरित्र और लगभग घटनाएं भी हमारे लिए परिचित हैं। बावजूद नये संदर्भ में उनकी प्रस्तुति बहुत कुछ बदली हुई दिखाई देती है। मैं कोशिश करूंगी कि हर स्तर पर कृति के मर्म को खोला जाय और इस क्रम में अनावश्यक दुहराव से बचा भी जाय।

(क)-**अश्वत्थामा** इस नाटक के केंद्र में है। जिस समय यह कृति रची गयी थी, तब तक न तो विश्व इतिहास में और न ही भारतीय इतिहास में प्रतिशोध के लिए तत्पर आतंकवाद का कोई अमानवीय चेहरा अस्तित्व में आया था। लेकिन इस कृति ने अश्वत्थामा के रूप में वैश्विक परिदृश्य पर उभरने वाले आतंकवाद की पहचान कर ली थी। कहना अतिशयोक्ति न होगी कि अश्वत्थामा के रूप में धर्मवीर भारती ने जिस अजन्मे आतंकवाद की भविष्यवाणी की थी आज दुनिया भर की जासूसी एजेंन्सियां अपने-अपने दफ्तरों में उसकी कुंडली खोल कर उलझी पड़ी हैं। अश्वत्थामा अपने बारे में कहता है-

"वध, केवल वध, केवल वधमेरा धर्म है।" × × × ×

"मैं क्या करूँ मातुल!वध मेरे लिए नहीं नीति हैवह है अब मनोग्रंथि।"8

आधुनिक सभ्यता जो अब तक की श्रेष्ठतम व्यवस्था के रूप में जनतंत्र के साथ अस्तित्व में आई थी,जिसमें विज्ञान की शक्ति और वैज्ञानिक जीवन दृष्टि की बातें थीं ।एक से एक उन्नत विचार और विचारधाराएं थीं, लेकिन इसमें सबसे महत्त्व पूर्ण भूमिका पूंजी की थी।उन्नत और मानवीय विचारों के बावजूद पूंजी की अपनी गति थी। अपना स्वभाव था। इस गति और स्वभाव के केंद्र में था एकाधिकारवाद । वह उसे युद्ध की ओर ले जा रहा था।जिस सभ्यता और व्यवस्था में युद्ध की अनिवार्यता हो वह ढेर सारे विचारों की जगह अर्धसत्य का नरेशन रचेगी ही। युद्ध में उसे विजय चाहिए । विजय का मार्ग सत्य का मार्ग ही हो, कदापि जरूरी नहीं।तभी तो धर्मराज तक अर्धसत्य का सहारा लेते हैं। और यही अर्धसत्य जिस एक चरित्र का निर्माण करता है वह प्रतिशोध और हिंसा से भरा हुआ अश्वत्थामा है।आज के आतंकवाद में मूर्तमान होता अश्वत्थामा। अपने बदबूदार रिसते जख्म के साथ अमरत्व से शापित और प्रतिशोध की आग में धधकता-जलता अश्वत्थामा। वह रात के अंधेरे में पांडवो की शिविर में आग लगा देता है, और अपने पिता के हत्यारे दृष्टद्युम्न की हत्या कर देता है। शिविर में सो रहे समस्त जनों की हत्या के आनंद में कैसा लगता है अश्वत्थामा-

"धुंआ, लपट, लोथें, घायल घोड़े, टूटे रथरक्त, मेदा, मज्जा, मुंड,/खंडित कबंधों में टूटी पसलियों में / विचरण करता था अश्वत्थामा सिंहनाद करता हुआ/नर रक्त से वह तलवार उसके हाथों में/चिपक गई थी ऐसेजैसे वह उगी हो उसी की भुजमूलों से।"9

युद्ध के सारे नियम तो पहले ही तोड़े जा चुके थे।अपने अवसर की संभावना देखते हुए सबने अन्याय का वरण किया।क्या अश्वत्थामा, क्या युधिष्ठिर।आतंकवाद हर युद्ध की अनिवार्य परिणति है।अगर आधुनिक विश्व की आतंकवादी प्रवृत्ति का सबसे प्रामाणिक चरित्र इस कृति में है तो वह अश्वत्थामा ही है, जिसमें आधुनिक आतंकवाद मूर्तमान होता है।

(ख)-**विदुर** का चरित्र पूरे महाभारत में तटस्थ और नीतिज्ञ के रूप में ज्ञात है।वे अंतिम समय तक युद्ध को टालते रहे।इस मिथकीय कृति में उनकी भूमिका क्या रह जाती है।वे तटस्थ हैं।नीतिज्ञ, आधुनिक शब्दावली में सर्वमान्य सर्वस्वीकृत बुद्धिजीवी।

युद्ध का आभूषण तलवार होती है, ऐसी कोई भी धातु जिससे तलवार और ताकत नहीं बन सकती युद्ध के लिए वह व्यर्थ है। उसी तरह ऐसा कोई ज्ञान या नीति की बाते अगर युद्ध के लिए कूटनीति नहीं बनती तो व्यर्थ है।प्रत्यक्ष युद्ध हो या उसकी छाया में चल रहा

शीत युद्ध, दोनों ही दशाओं में विदुर सरीखे लोग एक ऐसे आभूषण मात्र होकर रह जाते हैं जिसकी किसी को कोई जरूरत नहीं।

युद्ध सिर्फ और सिर्फ विजय चाहता है इसीलिए उसके भीतर से निःसृत यथार्थ अकल्पनीय और असाधारण किस्म का होता है उसकी पहचान भी नीतिज्ञ के वश की बात नहीं रह जाती।फिर उससे समाधान की उम्मीद करना भी बेमानी होता है। युद्ध का मनोविज्ञान,युद्ध के मूल्य,युद्ध का समय सामान्य दिनों से एकदम भिन्न होता है।लोग भय और आशंका के बीच जीते हैं।साफ-सुथरी और सरल चीजें भी जटिल हो जाती हैं। अतः विदुर जहां नीतिज्ञ के रूप में प्रसिद्ध थे, इस अंधे युग में अपने कोअसहाय और निरुपाय पाते हैं।वह खुद के बारे में कहते हैं-

"मैं विदुर हूँ कृष्ण का अनुगामी,भक्त और नीतिज्ञ पर मेरी नीति साधारण स्तर की है
और युग की सारी स्थितियां असाधारण हैंऔर अब मेरा स्वर संशयग्रस्त है।"10

इसी तरह कुछ और जो युद्ध के बाद बचे रह गए हैं ,मसलन धृतराष्ट्र हैं,गांधारी है, जिसने अपनी आंखों पर पट्टी बांध रखी है। यह न्याय देवी की पट्टी नहीं है, बल्कि एक स्त्री की नियति है। वह उतना ही देखना चाहती है जितना उसके दाम्पत्य में श्रेष्ठ और सम्भव है। अलग से इनका उल्लेख न करते हुए जरूरत पड़ने पर मैं इनके कथन उधृत करूंगी।

विदुर की तरह संजय भी युद्धभूमि से बाहर हैं। वे निस्पृह भाव से जो कुछ देखते हैं, उसकी 'रनिंग कमेंट्री'करते है।उनको कोई दिव्य शक्ति प्राप्त है।वे कर्मलोक से वहिष्कृत होकर महसूस करते हैं कि-

"एक छोटा निरर्थक शोभा- चक्र हूँदो बड़े पहियों के साथ घूमता हूँ।"11

युद्ध के बाद उनकी दिव्य शक्ति भी खो जाती है।शायद इतने बड़े युद्ध के बाद कुछ भी जो दिव्य था,पवित्र था उसके बचे रहने की संभावना मिट जाती है सिवा संहारकअग्नि वाणों के ।

(ग)- **युयुत्सु** अंधायुग का सबसे मार्मिक और ट्रैजिक चरित्र है। दुर्योधन का सौतेला भाई।युध्द में उसे युधिष्ठिर का पक्ष धर्म और न्याय का पक्ष प्रतीत हुआ था, दूसरे पांडवों के पक्ष में ही कृष्ण भी थे। कृष्ण पर उसकी अविचल आस्था थी।युद्ध और कूटनीति के उस पूरे परिदृश्य में युयुत्सु सबसे भोला- भाला चरित्र है।वह पांडवों की तरफ से युद्ध में शामिल हुआ था।अब जब युधिष्ठिर राजा हो गए तब तब वह उन्हीं पांडवों द्वारा बार बार अपमानित किया जाता है। अब युयुत्सु महसूस करता है कि- **"मैं उस पहिये की तरह हूँजो पूरे युद्ध के दौरान रथ में लगा थापर जिसे अब लगता है कि वह गलत धुरी में लगा था और मैं अपनी उस धुरी से उतर गया हूँ।"12**

जब आप अन्याय का विरोध करते हुए संघर्ष करते हैं तो आपको युयुत्सु की जरूरत होती है। लेकिन जब सत्ता प्राप्त हो जाती है तो आप खुद भी उसी अधर्म के और अन्याय में संलग्न हो जाते हैं। हमारे युग और समय का यह रोज- रोज दुहगया जाने वाला बेहद परिचित यथार्थ है।युयुत्सु कौरवपुत्र होकर भी युधिष्ठिर के साथ जाता है।वह देखता है कि जिसे वह धर्म का पक्ष समझ रहा था, वह भी अर्धसत्य और अन्याय का ही सहारा लेता है । अंत में जब तालाब में छिपे दुर्योधन को खोजकर युद्ध के नियमों को पीछे धकेलते हुए भीम उसका वध करते हैं तो युयुत्सु विरक्ति से भर जाता है।

कौरव पुत्रों में अकेला बचा युयुत्सु लगातार भीम के व्यंग वाणों से अपमानित होता रहता है। कोई उसके लिए कुछ न टोकता। युधिष्ठिर लाचार से यह सब देख रहे होते हैं।

देखा जाय तो पूरे महाभारत में एक अकेला कौरवपुत्र युयुत्सु सबसे बड़ा धर्म का पक्षधर था, जबकि युधिष्ठिर को धर्मराज कहा जाता है।उस महायुद्ध में युधिष्ठिर का तो एक पक्ष था, और वह अपने पक्ष के लिए लड़े थे । द्रोणाचार्य को जीतने के लिये उन्होंने अर्धसत्य का सहारा लिया।उन्होंने नर और पशु का भेद मिटाया, लेकिन युयुत्सु ने अपने भाई दुर्योधन के खिलाफ जाकर युद्ध में भाग लिया ।उसे विश्वास था कि कृष्ण और युधिष्ठिर का पक्ष ही न्याय का पक्ष है।विजय के बाद उसे भीम द्वारा बार बार अपमानित होना पड़ता था।प्रजा उससे घृणा करती रही कि वह अपने ही भाइयों का हत्यारा है-

"वह देखो! भिखमंगे ,लूले, लंगड़े, गंदे बच्चों कीएक बड़ी भीड़ उसपर ताने कसती
पीछे-पीछे चली आती है। आह, वह पत्थर खींच मारा किसी नेयुधिष्ठिर के राज्य में
नियति है यह युयुत्सु की जिसने लिया था पक्ष धर्म का।"13

राज दरबार में उसे बार -बार अपमानित किया जाता है।प्रजा में उसके लिए घोर अनादर और उपेक्षा है।महाभारत के युद्ध में अस्त्र-शस्त्र को जो मान- सम्मान मिला, उसके चलते प्रजा भी अपने संभावित अस्त्रों का प्रयोग करने लगती है।अपमान से तिल-तिल टूट चुका युयुत्सु आत्महत्या कर लेता है।उसकी आत्महत्या पर सब हंसते हैं। प्रजा जन भी,भीड़ भी और युधिष्ठिर के सब भाई भी।

कहीं कोई करुणा नहीं। कृपाचार्य कहते हैं-

"यह आत्म हत्या होगी प्रतिध्वनितइस पूरी संस्कृति मेंदर्शन में,धर्म में,कलाओं में

शासन व्यवस्था मेंआत्मघात होगा बस अंतिम लक्ष्य मानव का।"14

श्रीकृष्ण के चरित्र को लेकर धर्मवीर भारती ने थोड़े दिन बाद ही "कनुप्रिया" की रचना की।उस कृति के केंद्र में ब्रजभूमि की राधा और उनका प्रेम है।यानी एक ही चरित्र के इर्द- गिर्द बिल्कुल दो परस्पर विरोधी भाव।"कनुप्रिया" के केंद्र में प्रेम और समर्पण है तो अंधायुग के केंद्र में युद्ध और घृणा।बेहद मार्मिक ढंग से लिखी गयी इस कृति में कृष्ण का पूर्वपक्ष है, जहां उनके हाथों में बासुरी है, और गले में प्रेम लूरित मधुर धुनें हैं।पूरी ब्रजभूमि कृष्ण के मनोरम प्रेम में भींगी हुई है।इसी ब्रजभूमि में कृष्ण ने प्रेम के रास्ते प्रभुता अर्जित की थी।लेकिन ब्रजभूमि में किसी ने उन्हें प्रभु नहीं माना था।वहां आत्मीयता का भाव इतना सम्मोहक और प्रबल था कि किसी तरह की प्रभुता के लिए उसमें कोई स्थान नहीं रह जाता। महाभारत के कृष्ण एक कूटनीतिक व्यक्ति हैं ।अब उनके हाथों में अदृश्य सुदर्शन चक्र नाचता रहता है।वे इतिहास के ऐसे अकेले राजा हैं, जो युद्धभूमि में अपनी ही सेना के विपक्ष में खड़े थे।अपने को तटस्थ बनाये रखने की इतनी कुटिल और चतुर कूटनीति। सबको यह विश्वास है कि अगर कृष्ण चाहते तो महाभारत का युध्द रुक सकता था।उन्होंने वह महासंहार होने दिया।अपने प्रथम पुत्र और युद्धभूमि में बचे अंतिम वीर पुत्र ,जिसे कृष्ण के इशारे पर भीम ने युद्ध के निर्धारित नियमों के विरुद्ध जाकर मार डाला था।रक्त और राजमुकुट के बीच जिसका माथा फट गया था और जिसे जंगली हिंस्र जीव नोच रहे थे, उसी वीर पुत्र के कंकालों के बीच गांधारीअपने जीवन भर के संचित आत्मबल के सहारे श्रीकृष्ण को शाप देती है-

"तुम यदि चाहते तो रुक सकता था युद्ध यह मैंने प्रसव नहीं किया था कंकाल वह इंगित पर तुम्हारे ही भीम ने अधर्म किया×× ×× ××प्रभु हो या परात्पर हो/कुछ भी हो

सारा तुम्हारा वंश/इसी तरह पागल कुत्तों की तरह एक दूसरे को परस्पर फाड़ खायेगा

तुम खुद उनका विनाश करके कई वर्षों बाद किसी घने जंगल में

साधारण व्याध के हाथों मारे जाओ गेप्रभु होपर मारे जाओगे पशुओं की तरह।" 15

कनुप्रिया में प्रेम के रास्ते चलकर श्रीकृष्ण ने जो प्रभुता अर्जित की थी, युद्ध और घृणा के चक्रव्यूह में फंसकर श्रीकृष्ण युयुत्सु के मोहभंग और गांधारी के श्राप से प्रभुता को खो देते हैं।उनके राज्य में भयंकर उत्पात होता है।महाभारत युद्ध से निकल कर अनास्था और पशुता जनता में फैलती जाती है।सबआपस में एक दूसरे से मारकाट करने लगते है।

कृष्ण की प्रभुता का सत्व खत्म हो चुका था।अश्वत्थामा उनके बारे में बताता है-

"देख अभी आया हूँ सागर तट की उज्ज्वल रेती पर गाढ़े-गाढ़े काले खून में सने हुए

यादव योद्धाओं के अगणित शव बिखरे हैं जिनको मारा है खुद कृष्ण ने उसने किया है वही मैंने जो किया था उस रात फर्क इतना है मैंने मारा था शत्रुओं को पर उसने अपने ही वंश वालों को मारा है।16

युद्ध साध्य नहीं साधन होता है। न्याय और अन्याय के बीच लड़ा जाने वाला युद्ध अंततः दो पक्षो का युद्ध बन जाता है।फिर होता यही है कि दोनों पक्ष विजय के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ होकर अन्याय का रास्ता चुन लेते हैं। इसलियेअपने परिणाम में हर युद्ध अन्याय की ही विजय होकर रह जाता है। कुरुक्षेत्र की इसी पृष्ठभूमि पर दिनकर ने लिखा –**'धर्म पराजित हुआ स्नेह का डंका बजा विजय का"** 17 धर्मवीर भारती अपनी इस कृति में विजय को एक क्रमिक आत्महत्या की तरह देखते हैं।युधिष्ठिर महाभारत में मिली जीत को महसूस करते हैं-

"अर्धसत्य,रक्तपात,हिंसा से जीतकर अपने को बिल्कुल हारा हुआ अनुभव कर

×××××

सिंहासन प्राप्त हुआ है जो यह माना कि उसके पीछे अंधेपन की अटल परंपरा है

×××××

बाकी बचा मैं देखने को अंधियारे में निर्निमेष भावी अमंगल युग किसको बताऊं किंतु।"18

नाटक में इसके बाद थोड़ी देर के लिए धृतराष्ट्र गांधारी और कुंती का जिक्र आता है।सब हस्तिनापुर से बाहर जंगल चले जाते हैं एक धधकता हुआ बरगद उनके ऊपर गिरता है और उनकी भी मृत्यु हो जाती है। हस्तिनापुर रोज- रोज दुहराए जा रहे ऐसे अशुभ,अमंगल,अपशकुनों की लीलास्थली बन जाता है युधिष्ठिर कहते है-

"और विजय क्या है? एक लंबा और धीमा और तिल -तिल कर फलीभूत होने वाला आत्मघात और पथ कोई भी शेष नहीं अब मेरे आगे।"19

स्थापना और समापन के अलावा कुल पांच अध्यायों में लिखी गयी इस नाट्य कृति की कुल यही कहानी है।चरित्र चिर परिचित और जाने पहचाने हैं जैसा कि "कुरुक्षेत्र" के बारे में दिनकर ने कहा कि महाभारत की पुनर्प्रस्तुति उनका उद्देश्य नहीं है।वैसे ही भारती जी ने कहा है-

"अंधायुग कदापि न लिखा जाता,यदि उसका लिखना न लिखना मेरे वश की बात रह जाती।"×× ×× ××

इस दृश्यकाव्य में जिन समस्याओं को उठाया गया,उसके सफल निर्वाह के लिए महाभारत के उत्तरार्ध की घटनाओं का आश्रय ग्रहण किया गया है।"20

इन बातों से यह स्पष्ट है कि अपने समय और समाज की समस्याओं को नए सिरे से समझने के लिए बीसवीं सदी के दूसरे दशक से हिंदी में निरंतर मिथकीय कृतियां रची जाने लगी। इसी कड़ी में "अंधायुग" भी लिखा गया। सामाजिक विघटन की प्रक्रिया जैसे-जैसे तीव्र होती जाती है, व्यक्तिवाद बढ़ता जाता है। युद्ध अंततः इसी व्यक्तिवाद की सामाजिक परिणति है। कामायनी का मनु भी एक व्यक्तिवादी चरित्र है।नवोदित जनतांत्रिक व्यवस्था के लिए व्यक्तिवाद सबसे बड़ा खतरा है।सारस्वत प्रदेश में इड़ा के साथ मिलकर वह जिस उन्नत नगर की नींव रखता है, अपने व्यक्तिवाद के चलते वह उसी का ध्वंस भी करता है। प्रसाद जी श्रद्धा और समर्पण के रास्ते उसका परिष्कार करते हैं। उनका समाधान कितना वास्तविक है कितना काल्पनिक, मैं इसकी व्याख्या नहीं करूंगी।मैं सिर्फ उस एक सूत्र की पहचान रखना चाहती हूं जो क्रमशः अपने समय की इन तीनों महत्त्वपूर्ण कृतियों- कामायनी, कुरुक्षेत्र और अंधायुग में समान रूप से दिखाई देता है। इन तीनो कृतियों में महामृत्यु के बाद का जीवन है।यह महामृत्यु कामायनी में यह प्रलय के माध्यम से घटित होती है, जबकि कुरुक्षेत्र और अंधायुग में महाभारत का युद्ध इसका माध्यम बनाता है। मृत्यु के बाद फैले भय,सन्नाटे और दहशत के बाद का जीवन सत्य और सामाजिक यथार्थ इन कृतियों के विषय हैं।

इन अलग अलग कृतियों का रचना वर्ष अलग- अलग हो सकता है, लेकिन समय एक ही है। जीवन संदर्भ एक हैं।तीनों रचनाकारों ने सत्य को जानना चाहा है।प्रसाद जी लिखते हैं-

"और सत्य यह एक शब्द तू,कितना गहन हुआ है,
मेधा के क्रीड़ा पिंजर का,पाला हुआ सुआ है।
सब बातों में खोज तुम्हारी,रट सी लगी हुई है,किंतु स्पर्श से तर्क करों के,बनता छुई मुई है।"-21

महाभारत में जिस धर्मराज को सत्य का मूर्तमान रूप समझा जाता था, वे एक ऐसे अर्धसत्य के प्रणेता होकर उभरते हैं कि सारी मानव जाति पशुता से भर जाती है। दुर्योधन सहित समूचा कौरव पक्ष, जो युद्ध में मारा जा चुका है, वे तो इस पशुता से दूर हैं, लेकिन जो विजेता थे, जो बचे रह गए , वे सबके सब इस अर्धसत्य जनित पशुता के कलंक को ढोते रहते हैं।यहां तक कि प्रभु कृष्ण भी अपने ही वंशजों की क्रूर हत्या करते हुए पशुवत हो जाते हैं।

सन40 से 60 के बीच का समय, चाहे यूरोप हो या भारत, हर जगह किसी अर्धसत्य की विनाशलीला चल रही है।समय की इसी पृष्ठभूमि पर यशपाल ने "झूठा सच"जैसे उपन्यास की रचना की। जब पूरी दुनिया हिरोशिमा और नागासाकी की अधजली लाशों में सत्य को खोज रही थी तो उसी समय भारत एक और गहरी त्रासदी से गुजर रहा था। जिस देश को सत्य और अहिंसा के रास्ते आजादी मिली थी, वही विद्वानों द्वारा प्रतिपादित द्विराष्ट्र के सिद्धांत वाले अर्धसत्य से बाकायदा हिंसा के रास्ते विभाजन को स्वीकार कर चुका था। तमस,अंधायुग,अंधेरे में, जैसी न जाने कितनी महत्त्वपूर्ण रचनाओं का संबंध इस अंधता से है।

आज पूरी दुनिया उत्तर आधुनिक समाज की दहलीज पर पांव रखकर आगे बढ़ रही है।कभी जर्मनी के विचारक नीत्से ने "ईश्वर की मृत्यु" की घोषणा की थी।अंधायुग में प्रभु की मृत्यु का दृश्य वर्णित है।सत्ता न्याय के तर्क को छोड़कर जैसा कि इस कृति के प्रारंभ में ही घोषणा कर दी गयी थी-"सत्ता होगी उनकी जिनकी पूंजी होगी।" यही तो हमारे समय का ,हमारे देश का रोज-रोज दुहराया जाने वाला यथार्थ है।

उत्तरआधुनिकता आज किसी भी तरह के सत्य को स्वीकार नहीं करती।सत्य के बरक्स वह अवधारणा को महत्त्व देती है। यही अवधारणा अलग-अलग समुदायों,समूहों का सत्य रचती है। जो न्याय की कसौटी पर अंततः अर्ध सत्य साबित हो रहा है। उत्तर आधुनिक विचारक देरिदा इतिहास का अंत,फिर कविता का अंत की घोषणा करते हैं। हम अपनी- अपनी अवधारणाओं से रोज नए-नए सत्य रचते हैं। एक का सत्य दूसरे के लिए अर्धसत्य है। धर्मवीर भारती **देरिदा** के अंत वाले सिद्धांत से आधी सदी पहले प्रभु के अंत की उद्घोषणा कर देते हैं। आज हम जिस समाज में जी रहे हैं वह अंधायुग की ही जीराक्स कॉपी है। न्याय की तलाश में हम सब युयुत्सु की तरह भटकते हुए अनास्था के गर्भ विवर में शापित भटक रहे हैं। जब अंधायुग लिखा गया तब इतिहास में वह दौर नेहरू युग के सम्मोहन का दौर था। उस समय लिखी जा रही नयी कविता का मुख्य स्वर रोमैंटिक था। उसके विपरीत अंधायुग के भीतर गहरी अनास्था थी।ऐसी ही अनास्था पर उन्होंने अपनी लंबी कविता **" प्रमथ्यूगाथा"** लिखी थी।तब ऐसा लगना स्वाभाविक था कि वे मुख्य धारा के प्रवाह से अलग चल रहे हैं । लेकिन थोड़े ही दिनों बाद जब भारत- चीन युध्द के बाद "अकविता" का साठोत्तरी दौर आया तो उसके भीतर यही अनास्था का स्वर प्रबल था।"भक्तिकालीन काव्य का एक पहलू"में जैसा कि मुक्तिबोध ने लिखा है –

"किसी भी कृति का मूल्यांकन करते हुए हमें देखना चाहिए कि वह किन सामाजिक और मनोवैज्ञानिक शक्तियों की टकराहट से पैदा हुई है? उसका अंतः स्वरूप क्या है ? और वह पाठक की किन रुचियों को विकसित करती है, और किन्हें नष्ट करती है?"23

मैंने जब भी और जितनी बार भी अंधायुग को पढ़ा , तब- तब यही लगा कि यह कहानी और इसका यथार्थ हमारे आसपास का यथार्थ है।कोई युद्ध किसी पक्ष के विजय के साथ कभी खत्म नहीं होता।प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति में ही द्वितीय विश्वयुद्ध की भूमिका लिख दी गयी थी।और अब भी हिरोशिमा या नागासाकी के बाद कोई युद्ध समाप्त नहीं हुआ है।सिर्फ युद्ध के मैदान और तारीखें बदलती रहती हैं। कभी ईराक तो कभी वियतनाम।ऐसे में ब्यास का यह कथन कि-

"ज्ञात क्या तुम्हें है परिणाम इस ब्रह्मास्त्र का?
यदि लक्ष्य सिद्ध हुआ ओ नरपशु !
तो आगे आने वाली सदियों तक पृथ्वी पर
रसमय वनस्पति नहीं होगी
शिशु होंगे पैदा विकलांग और कुष्ठग्रस्त
सारी मनुष्य जाति बौनी हो जाएगी।"24

इस कृति को पढ़ना एक ऐसे यथार्थ से गुजरना है जिसे हम अपने करीब,अपने टी वी के पर्दे पर,कभी अफगानिस्तान तो कभी रूस -यूक्रेन के रूप में देख रहे हैं। हमारे भीतर हर क्षण किसी न किसी प्रभु की मृत्यु हो रही है।और किसी भी तरह की आस्था से वंचित युयुत्सु की भांति हमारी नियति में आत्मघात के ही अलग-अलग स्तर रूपायित हो रहे हैं।

संदर्भ-

1. जयशंकर प्रसाद,ध्रुवस्वामिनी,पृष्ठ-15, विश्वविद्यालय प्रकाशन,चौक,वाराणसी-1
2. धर्मवीर भारती,अंधायुग,पृष्ठ-1,किताब महल, अंसारी रोड,दरियागंज,नई दिल्ली-2
3. गजानन माधव मुक्तिबोध,रचना का तीसरा क्षण,एक साहित्यिक की डायरी,पृष्ठ-46,भारतीय ज्ञानपीठ,लोदी रोड,नई दिल्ली-3
4. जयशंकर प्रसाद,चिंता सर्ग, पृष्ठ25, कामायनी,साक्षी प्रकाशन,एस-16,नवीन शाहदरा,दिल्ली-32
5. रामधारी सिंह 'दिनकर', कुरुक्षेत्र, पृष्ठ-3, उदयाचल,राजेन्द्र नगर,पटना-16
6. धर्मवीर भारती,अंधायुग,पृष्ठ-87,किताब महल, अंसारी रोड,दरियागंज,नई दिल्ली-2
7. उपर्युक्त------पृष्ठ-3, पृष्ठ-33, पृष्ठ-64, 59, 58, 89908199
17. रामधारी सिंह 'दिनकर', कुरुक्षेत्र, पृष्ठ-49 उदयाचल,राजेन्द्र नगर,पटना-16
18. धर्मवीर भारती,अंधायुग,पृष्ठ-85, किताब महल,अंसारी रोड,दरियागंज,नई दिल्ली-2
19. उपर्युक्त------पृष्ठ-96
20. उपर्युक्त------भूमिका
21. जयशंकर प्रसाद,कर्म सर्ग, पृष्ठ85, कामायनी,साक्षी प्रकाशन,एस-16,नवीन शाहदरा,दिल्ली-32
22. ध्रुव शुक्ल,अद्वैत का विस्तार,समास-17
23. गजानन माधव मुक्तिबोध,समीक्षा की समस्याएं,पृष्ठ-112,राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली-
24. धर्मवीर भारती,अंधायुग,पृष्ठ-75,किताब महल,अंसारी रोड,दरियागंज,नई दिल्ली-2

❒ **आचार्य**, हिन्दी

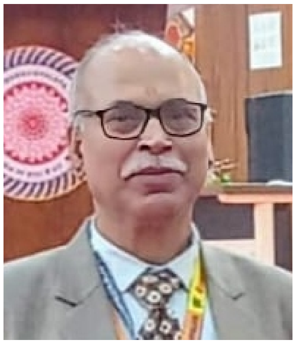

डॉ. संपूर्णानंद झा

जीवीवी में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का कार्यान्वयन

देश स्वतंत्र होने के बाद शिक्षा प्रणाली में व्यापक बदलाव लाने के दृष्टिकोण से प्रथम शिक्षा नीति 1968 में इंदिरा सरकार के द्वारा लाई गई जो कोठारी आयोग की सिफारिश पर आधारित थी। इस नीति के अनुसार 14 वर्ष तक की आयु के बच्चों को अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था भारत के संविधान में निहित प्रावधान को ध्यान में रखकर लाई गई थी। दूसरी शिक्षा नीति 1986 में राजीव गांधी सरकार तथा इसी में कुछ बदलाव 1993 में नरसिंहा राव सरकार के द्वारा किया गया, जिसका मुख्य उद्देश्य समाज में असमानता को दूर करने के उद्देश्य से भारतीय महिलाओं तथा अनुसूचित जाति एवं जनजाति वर्ग को शिक्षा के समान अवसर प्रदान करना था। तीन दशक के उपरांत मोदी सरकार ने भारतीय शिक्षा नीति में क्रांति लाने के उद्देश्य से 29 जुलाई, 2020 को राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) लाई गई। वर्तमान सदी का यह पहला राष्ट्रीय शिक्षा नीति भारत की निरंतर उन्नति एवं आंतरिक विकास के मामले में वैश्विक मंच पर नेतृत्व की कुंजी के रूप में है। यह गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, सामाजिक न्याय और समानता, वैज्ञानिक उन्नति, राष्ट्रीय एकता और सांस्कृतिक संरक्षण को भविष्य में निर्धारण कर विकसित भारत के सपने को साकार करने के उद्देश्य से लाई गई है। इस शिक्षा नीति का मुख्य उद्देश्य शिक्षकों को सशक्त बनाना और उनकी भर्ती, संचालन की शर्तो, स्थानांतरण को बढ़ावा, नौकरी का सृजन, छात्रों का संपूर्ण विकास और शिक्षा प्रणाली में पारदर्शिता लाने के दृष्टिकोण से डिजिटलीकरण पर बल देना है। इस शिक्षा नीति का प्रमुख लक्ष्य लचीले पाठ्यक्रम का निर्माण एवं प्रौद्योगिकी का उपयोग कर छात्रों में कौशल विकास और ज्ञान से सुसज्जित छात्र/छात्राओं का समग्र विकास करना है। इस नीति में बहुत सारी सकारात्मक शैक्षणिक गतिविधियों पर जोर दिया गया है, जो सरकार के सामने इसके राष्ट्रव्यापी कार्यान्वयन और छात्रों में सिखने के प्रयास तथा रोजगार उन्मुखी शिक्षा कौशल का विकास जैसे लक्ष्यों को तैयार किया गया है, जिन्हें प्राप्त करना

एक बड़ी चुनौती भी है।

किसी भी अकादमिक कार्यक्रम के लागू किये जाने के बाद अध्ययन-अध्यापन, छात्रों द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रमों के अंतर्गत नई चीजों को सीखना और उनमें पाठ्यक्रम के अनुकूल कौशल विकास इत्यादि के स्तर का मूल्यांकन के लिए विश्वविद्यालय द्वारा समय-समय पर आंतरिक एवं सेमेस्टर अंत परीक्षा के द्वारा निर्धारित किया जाता है। परीक्षा प्रणाली छात्रों के द्वारा अर्जित ज्ञान और कौशल विकास के मूल्यांकन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस लेख के माध्यम से सभी हितग्राहियों के बीच प्रभावी सहयोग, एक-दूसरे का पूरक और निरंतरता की आवश्यकता को समझाने, मूल्यांकन और परीक्षा की चुनौतियों का विश्लेषण करना है जिसमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की खूबसूरती अर्थात फायदों के साथ ही कमजोरियों और अवसरों की ओर ध्यान आकृष्ट करना है।

NEP- 2020 का गुरू घासीदास विश्वविद्यालय में कार्यान्वयन-

(1) गुरू घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर में सत्र 2022-23 से राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 का स्नातक स्तर में अक्षरशः पालन करने के पथ पर अग्रसर है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 सर्वप्रथम विश्वविद्यालय के अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी के सभी सातों विभाग के बी.टेक प्रोग्राम में लागू की गई और सत्र 2023-24 से विश्वविद्यालय शिक्षण विभागों में संचालित शेष सभी स्नातक स्तर के प्रोग्राम में लागू किया गया है। स्नातकोत्तर स्तर में इसे लागू किया जाना भी विचाराधीन है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति की मुख्य अवधारणा छात्रों के पाठ्यक्रम में लचीलापन रखकर उनके बहुमुखी व्यक्तित्व का विकास करना है। छात्रों को अपने मुख्य विषय एवं सहायक विषयों के अतिरिक्त बहु अनुशंसित विषय यथा Multi disciplinary Course, Ability Enhancement Course, Skill Development Course (कौशल विकास विषय) Value Added Course (मूल्य अभिवृद्धि) विषय अध्ययन करने का अवसर प्रदान करता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के द्वारा छात्रों को बहु अनुशंसित विभिन्न विषयों का अध्ययन अध्यापन कराकर छात्र/छात्राओं के सम्पूर्ण विकास कर एक स्वावलंबी, परिश्रमी, उद्यमशील कौशल युक्त, बौद्धिक, आध्यात्मिक विकास के साथ-साथ समाज के प्रति उत्तरदायी तथा भारतीय संस्कार से संस्कारित जिम्मेदार नागरिक निर्माण करने का लक्ष्य लेकर चल रहा है।

(2) Samarth (समर्थ) एक महत्वपूर्ण उद्यम संसाधन योजना (Enterprises Resource Planning) आनलाईन संसाधन है। Samarth (समर्थ) साफ्टवेयर प्लेटफार्म एक ऐसा कंप्यूटर साफ्टवेयर है, जो विश्वविद्यालय में होने वाले लगभग सभी कार्यो को ऑनलाईन सेवा उपलब्ध कराने में मदद करता है। इस Samarth प्रणाली के द्वारा छात्रों के ऑनलाईन प्रवेश, नामांकन, विषय चयन, वर्ग समय सारणी, छात्रों की कक्षा में उपस्थिति से लेकर परीक्षा आवेदन पत्र भरने, परीक्षा में प्रवेश पत्र जारी करने, परीक्षा का समय सारणी का निर्माण, ऑनलाईन प्रश्न पत्रों का संकलन (QPDS), परीक्षा परिणाम की घोषणा एवं प्रावीण्य सूची तैयार करने से संबंधित सभी कार्य किया जाता है। यह प्रशासनिक व्यवस्था में पारदर्शिता बनाए रखने में एक अहम् भूमिका का निर्वाह कर रहा है। देश में पहली बार इस विश्वविद्यालय द्वारा 2020 में समर्थ पोर्टल के माध्यम से बी.टेक परीक्षा परिणाम की घोषणाऔर Samarth को ऑनलाईन परीक्षा परिणाम घोषणा करने में प्रारंभिक पहचान देने में अग्रणी भूमिका का निर्वाह किया गया।

(3) समर्थ पोर्टल के माध्यम से छात्रों का कक्षा में उपस्थिति एवं इसके ऑनलाईन संधारण की व्यवस्था उपलब्ध है जिसे लागू किया जाना प्रक्रियाधीन है, इस व्यवस्था को सत्र 2024-25 में स्कूल ऑफ इंजीनियरिंग एण्ड टेक्नोलॉजी अध्ययनशाला में लागू किये जाने का निर्णय लिया गया है। इससे छात्रों की कक्षा में उपस्थिति सुनिश्चित की जायेगी। छात्रों द्वारा अर्जित ज्ञान एवं कौशल विकास के मूल्यांकन के लिये दो आंतरिक (30%) एवं सेमेस्टर अंत (70%) परीक्षा में से प्रत्येक सेमेस्टर में गणना प्रावधान है। छात्रों को परीक्षा उपरांत उनके द्वारा दिये गये उत्तरों और परीक्षक द्वारा जाँच उपरांत छात्रों को पुनर्वलोकन कराये जाने का व्यावहारिक प्रावधान भी विश्वविद्यालय में निरंतर चल रहा है जिससे छात्रों को अपने द्वारा दिये गये उत्तरों का अवलोकन और मूल्यांकनों को समझने का अवसर भी मिलता है। इससे छात्रों में प्राप्त ज्ञान और कौशल विकास के क्षेत्र में उपलब्धियों और त्रुटियों को जानने का अवसर मिलता है।

(4) छात्रों का विश्वविद्यालय में प्रवेश एवं नामांकनः- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अंतर्गत संचालित विभिन्न स्तर के पाठ्यक्रमों में प्रवेश हेतु राष्ट्रीय स्तर पर प्रवेश परीक्षा में उत्तीर्ण और मेधावी सूची में चयनित छात्र/छात्राओं को ऑनलाईन माध्यम से न्यूनतम योग्यता धारकों को समर्थ पोर्टल के माध्यम से प्रवेश दिया जाता है। प्रवेश उपरांत छात्रों को पूर्व अध्ययन किये हुये संस्थानों से प्रवजन प्रमाण पत्र की मूल प्रति जमा किये जाने के उपरांत निर्धारित शुल्क लेकर नामांकन (Enrollment No.) तथा अनुक्रमांक (Roll No.) जारी की जाती है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग एवं शिक्षा मंत्रालय के द्वारा समय-समय पर प्राप्त निर्देशों के अनुरूप छात्रों को ABC (Academic Bank of Credit) में पंजीयन होने के उपरांत छात्र आगे की सुविधा एवं विषय चयन के लिय सक्षम हो जाते है।

(5) गुरु घासीदास विश्वविद्यालय छात्रों को मल्टीपल इंन्ट्री एवं मल्टीपल एक्जिट माध्यम को व्यावहारिक रूप में अक्षरशः पालन कराने के लिये दृढ़ संकल्पित है । इसके अंतर्गत छात्रों को चार वर्षीय स्नातक स्तर के पाठ्यक्रम में 80 क्रेडिट के मुख्य विषय मेजर कोर्स तथा मेजर कोर्स के सहायक कोर्स के रूप में 32 क्रेडित के माईनर कोर्स चुनने का अवसर प्रदान करता है । इसके अलावा 9 क्रेडिट का मल्टीडिसीप्लीनरी कोर्स, 8 क्रेडिट का एबिलिटी इन्हेंसमेंट कोर्स, 9 क्रेडिट का स्किल इ्रन्हेसमेंट कोर्स तथा 10 क्रेडिट का वैल्यूएडेड कोर्स में छात्र को अपनी अभिरूचि के विषयों का चयन करने का अवसर प्रदान करता है। वर्तमान राष्ट्रीय शिक्षा नीति स्नातक स्तर पर अनुसंधान करने का अवसर भी प्रदान करता है, जिसके अंतर्गत उन्हें 12 क्रेडिट के रिसर्च प्रोजेक्ट/डिजर्टेशन करने का अवसर भी उपलब्ध है जिसके बाद छात्रों को चार वर्षीय कोर्स पूर्ण करने के उपरांत उन्हें संबंधित संकाय के संबंधित विषय में स्नातक (Honours with Research) की उपाधि प्रदान किये जाने का अवसर प्रदान करता है। यहां विभिन्न विषयों के बारे में संक्षिप्त जानकारी प्रदान करना भी उपयुक्त प्रतीत होता है अतः आसान शब्दों में इसे बताया जाए तो मेजर कोर्स मुख्य विषय है जिनमें छात्रों को उपाधि प्रदान की जायेगी और उनके द्वारा अर्जित सम्पूर्ण क्रेडिट का 50 प्रतिशत क्रेडिट का होना आवश्यक है, जबकि माईनर कोर्स छात्रों को मुख्य विषय के वृहद जानकारी हेतु सहायक कोर्सेस है। इन दो के अलावा मल्टीडिसिप्लनरी कोर्सेस के अंतर्गत मुख्य पांच क्षेत्र निर्धारित किये गये है यथाः-

(क) प्राकृतिक एवं भौतिक विज्ञान
(ख) मानविकी एवं समाजशास्त्र
(ग) वाणिज्य एवं प्रबंधन
(घ) गणित एवं संगणक
(च) पुस्तकालय सूचना एवं संचार विज्ञान

यहां यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि ऊपर वार्णित विषयों में से छात्र/छात्राएं वह विषय चयन नहीं कर सकतें है जिसकों उन्होंने 10+2 लेवल में अध्ययन किया हो अर्थात मल्टिपल डिसिप्लनरी कोर्स (डक्ब्द्ध का मुख्य उद्देश्य छात्रों को अपने मुख्य विषय के अध्ययन के साथ समानांतर बौद्धिक ज्ञान ऊपर वर्णित क्षेत्रों में प्राप्त करना है। एब्लीविटी इन्हेंसमेंट कोर्स (AEC) के अंतर्गत छात्रों में भारतीय भाषाओं तथा अंग्रेजी का सम्प्रेषण और लेखन के अलावा वाद-विवाद, भाषाई ज्ञान का विकास करने का अवसर देता है। जबकि स्किल इन्हेंसमेंट कोर्स (AEC) के द्वारा छात्रों को व्यावहारिक कौशल विकास और रोजगारोंमुखी शिक्षा प्रदान करने का लक्ष्य है। जहां तक वैल्यूएडेड कोर्सेस (VAC) का संबंध हैं इसे 4 ग्रुपों में विभाजित किया गया है जो सभी छात्रों के लिये पढ़ना अनिवार्य किया गया है। जिसके अंतर्गत छात्रों को निम्नलिखित क्षेत्रों में से प्रथम सेमेस्टर में किसी दो और द्वितीय सेमेस्टर में शेष दो विषयों का अध्ययन करना हैः-

क. भारत बोध
ख. पर्यावरण शिक्षा
ग. डिजिटल एवं तकनीकी समाधान
घ. स्वास्थ्य और वेलनेस/योगा/खेलकूद/फिटनेस

इस प्रकार छात्रों को ऊपर के चारों क्षेत्रों में से पहले दो सेमेस्टर में कुल चार विषयों का अध्ययन करना है इसके साथ ही छात्रों को दो क्रेडिट से चार क्रेडिट के समर इंटरर्नशीप या अप्रेंटीसशीप किसी फर्म, इंडस्ट्री, आर्गनाईजेशन या किसी उच्च शिक्षा/रिसर्च संस्थान से प्रयोगशाला का ट्रेनिंग करने का अवसर प्रदान करता है ।

❐ **परीक्षा नियंत्रक**

डॉ. संतोष सिंह ठाकुर

अस्तित्ववादी दर्शनः एक विवेचन

मानव और मानव जीवन की व्याख्या गणित या विज्ञान के सामान्य सिद्धांत की तरह नहीं की जा सकती। विज्ञान के कुछ सिद्धांत और वाद व्यक्ति के जन्तु वैज्ञानिक गुणों का सामान्यीकरण करके उसके स्वतंत्रता और गरिमा का अमानवीकरण करता है। व्यक्ति के आंतरिकता को भी महत्व दिया जाना चाहिए न कि विज्ञान द्वारा स्थापित केवल यांत्रिक बाह्यता पर, मानव रोबोट नहीं है। व्यक्ति का वास्तविक स्वरुप और अस्तित्व उसके अनुभूति, स्वतंत्रता और आंतरिकता (subjectivity) में है। ऐसे कुछ उद्गार अस्तित्ववादी दार्शनिकों का है। अस्तित्ववादी साहित्य और दर्शन में नकारात्मक भाव यथा चिंता, क्लेश, धुकधुकी, व्यथा, नैराश्य, योजनाओं के निर्थकता, निष्प्रयोजनता, भय, संत्रास आदि विचारों से भरा पड़ा है। पाश्चात्य दर्शन बौद्धिकता और विचारशीलता पर अधिक महत्व देता है जो ''मैं सोचता हूँ '' से शुरू होता है और इतना ही नहीं वह मानव अस्तित्व का आधार भी विचार या बुद्धि को मानता है, जिसे रेने डेकार्ट ने ''मैं सोचता या विचार करता हूं इसलिए मैं हूं'' (I think therefore I am) कहा है जबकि सोचना (To think) और होना (To be) दोनों अलग अलग आयाम है। व्यक्ति अगर सोचकर जीवन जीता है तो वह कृत्रिम और विशुद्ध बौद्धिक जीव बन जाएगा और अतिशय बौद्धिकता मानव जीवन को यंत्रवत बना, सृजनात्मकता को शून्य कर देती है। इसके विपरीत अस्तित्ववादी दार्शनिकों ने स्वतंत्रता और मानवता को अधिक महत्व दिया है। अस्तित्ववादी दार्शनिक में प्रमुख नाम सोरेन कर्कगार्ड, गैब्रिएल मार्शल, कार्ल यास्वर्स, मार्टिन हाईडेगर, ज्यां-पाल सार्त्र और फ्रेडरिक नीत्शे है। इस दर्शन के महत्वपूर्ण चिंतन इस प्रकार हैः

- **जड़ पूर्ण और मानव चेतना अपूर्ण है-**

अस्तित्ववादी दार्शनिक चिंतन के अनुसार मानव एक प्रामाणिक अस्तित्वादी जीव है जिसके चेतना का विकास या इवॉल्व सतत रूप से होते रहता है। वहीं पदार्थ में चेतना का अभाव होने के कारण वह पूर्ण है। यथा पानी लाखों वर्षों से पानी H_2O ही है और वह अपरिवर्तनशील एवं पूर्ण है।

वहीं मनुष्य की चेतना या कॉन्ससियसनेस का विकास एक सतत प्रकिया है और यह लगातार इवॉल्व हो रहा है, इस प्रकार कोई भी मनुष्य अपने आप में पूर्ण नहीं हो सकता। मनुष्य एक अपूर्ण जीव है। मनुष्य की चेतना में गतिशीलता का उदाहरण इस तरह भी दिया जाता है कि मनुष्य एक ही नदी में दो बार प्रवेश नहीं कर सकता क्योंकि दूसरी बार प्रवेश के समय उसके चेतना या व्यक्तित्व में और नदी में कंटिन्यूअस प्रवाहित जल बदल चुका होता है। मानव चेतना के गतिशीलता के कारण कहा गया है कि वह, वह नहीं है जो वो है, वह, वह है, जो वो नही है जैसे कोई विद्यार्थी विद्या अध्ययन कर रहा है तो वह भविष्य में चिकित्सक, अभियंता , वैज्ञानिक, दार्शनिक, प्राध्यापक, प्रशासक, प्रबंधक, राजनेता आदि हो सकता है, उसके वर्तमान को विद्यार्थी बस मान लेना सही नहीं है। अतः चेतना के सतत विकास की प्रक्रिया में व्यक्ति को उसके वर्तमान स्थिति में बाँध देना उचित नहीं है। अतः मनुष्य की चेतना को किसी एक फ्रेम में नहीं बांध सकते।

- **शून्यता-**

मानव के अस्तित्व के साथ साथ शून्यता का भी जन्म होता है जिसकी उपमा उसने कुंडली मारकर बैठे सर्प से की है। अस्तित्व और शून्यता एक दूसरे के सह-चर्य है। मानव हृदयस्थली में कुंठा , संताप, अकेलापन, निराशा, भय, चिंता क्लेश और अंतर्द्वंद आदि मनोविकार और नकारत्मकता का भाव भी हमेशा रहता है। इसकी उत्पत्ति जड़ और दूसरे मनुष्य की चेतना की उपस्थिति स्वयं की चेतना (के लिए विषय बनकर प्रतिरोध और संघर्ष का कारण बनते है। इससे ही नथिंगनेस का भाव उत्पन्न होता है। व्यक्ति की यह विचार कि मेरी शक्ति असीम और सब कुछ सम्भव है के यथोचित परिणाम नहीं आने पर उसे चिंता, क्लेश और भय उत्पन्न करता है। इसके विपरीत शक्ति सीमित और सब कुछ पहले से तय है, कुछ नया हो ही सकता के विचार से भी उसे निराशा, जड़वादी, देववादी और भाग्यवादी बनाता है। अचेतन और चेतन मन का द्वंद, परंपरावादी नैतिक और पुरातन धार्मिक विचार भी व्यक्ति की स्वतंत्रता में अवरोध उत्पन्न करने के कारण जीवन व्याधि मनोविकार पैदा करते हैं।

- **ईश्वर नहीं है -**

चूंकि चेतना का स्वभाव ही परविर्तनशीलता है अतः ईश्वर जैसा कोई पूर्ण चेतना का कोई अस्तित्व हो ही नहीं सकता। अमूर्त और पूर्ण ईश्वर की कल्पना भ्रामक और पलायनवादी दृष्टिकोण है, पूर्ण ईश्वर की कल्पना खरगोश के दो सींग होने जैसा दिवा स्वप्न है जिसका वास्तविकता से कोई सरोकार नहीं। नीत्शे ने तो यहां तक कह डाला कि ईश्वर मर चुका है और सार्त्र ने यहां तक कह डाला कि ईश्वर होना ही नहीं चाहिए। फिर भी कुछ अस्तित्ववादी दार्शनिक ईश्वरवादी है यथा सोरेन कर्कगार्ड, गैब्रिएल मार्शल और कार्ल यास्वर्स आदि ।

- **पूर्ण स्वतंत्रता -**

मानव मूलतः निरपेक्ष स्वतंत्रवादी (एब्सोल्यूट फ्रीडम) चेतनशील जीव है। ईश्वर,प्रकृति और समाज उसके स्वतंत्रता के लिए बाधक तत्व है। मनुष्य स्वतंत्र होने के लिए हमेशा प्रयत्नशील होता है या यों कहें कि वो स्वतंत्र होने के लिए अभिशप्त है। मनुष्य अपने निर्णयों, कर्मों के लिए स्वयं स्वतंत्र है अपने कर्म फल के लिए भी स्वयं उत्तरदायी (responsible) है। भले ही मनुष्य अपना निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र है लेकिन उसका चुनाव जन्म, देश और सामाजिक परिवेश द्वारा बाधित हो जाने के कारण उसकी स्वतंत्रता बाधित भी होती है, उसकी परम स्वतंत्र प्राप्त होने की इच्छा उसे चिंतित और दुखी बनाती है।

- **आत्म प्रवंचना और अर्थहीन अस्तित्व -**

मनुष्य का जीवन उसके अस्तित्व, जड़ पदार्थ और परिवेश से होता है न कि ईश्वर से। अपने चुनाव, कर्मों, कर्म-फल, अस्तित्व,

निर्णय, और रेस्पॉन्सिबिल्टी के लिए ईश्वर को दोष देना आत्म प्रवंचना (bad faith) को जन्म देता है और मनुष्य को अर्थहीन अस्तित्व की और ले जाता है जबकि मानव एक ऑथेंटिक अस्तित्वादी जीव है। अतः ईश्वर से मनुष्य की उत्पत्ति मानने से मनुष्य में भी ईश्वर का कुछ गुण (essence) आ जायेगा जो कि उसकी स्वतंत्रता को बाधित कर मनुष्य को ईश्वर का कठपुतली बना देगा जो कि अस्तित्ववादी दर्शन के विपरीत है।

- **व्यक्ति एक परियोजना है -**

मनुष्य में कोई प्रारब्ध, सार, गुण या ज्ञान (essence) पहले से मौजूद नहीं रहता वरन उसे स्वयं से अर्जित करना पड़ता है जो उसके अस्तित्व के बाद आता है। मानव अपने कर्मों के आधार पर जो बनना चाहता है बन सकता है भाग्य जैसा कोई पूर्व नियोजन या प्रारब्ध चीज नहीं होता है। एक जगह वो कहते हैं मनुष्य एक परियोजना की तरह है जिसके पास एक व्यक्तिपरक जीवन होता है, न कि किसी तरह का काई, कवक या गोभी जैसे अर्थहीन अस्तित्व। स्व के आत्म-प्रक्षेपण से पहले कुछ भी नहीं होता, न ही बुद्धिपूर्ण अतिरेक. मनुष्य तभी अस्तित्व प्राप्त करता है जब वह वही होता है जो वह बनने का इरादा रखता है । इस दर्शन में मानव और स्वतंत्रता को केंद्र में होने के कारण कई बार अस्तित्ववाद को ही मानवतावाद मान लिया गया है। मनुष्य का गुण (essence) उसके अस्तित्व का अनुगामिनी होता है अर्थात मनुष्य का अस्तित्व पहले आता है फिर एसेंस या भाव बाद में निर्मित होता है जो देकार्त के पूर्व में वर्णित उद्घोष से विपरीत है जहां सार्त्रे कहते हैं कि मेरा अस्तित्व है अतः मैं सोचता हूँ। डार्विन भी प्रत्येक जीव को अपने अस्तित्व संघर्ष करने की बात करते है

- **विवेचन एवं निष्कर्ष -**

द्वितीय विश्वयुद्ध के विभीषिका के समय नैराश्य और तनाव के वातावरण के समय उपजा सार्त्रे साहित्य को दर्शन की संज्ञा दें या नहीं, विषय पर कई विचारकों का मतभेद है। यह दर्शन अपूर्ण, पदार्थवादी, नकारात्मक और अनीश्वरवादी है जो मानव को ऑथेंटिक अस्तित्ववादी और एबोल्यूट स्वतंत्रता वादी बनाने के उत्कट इच्छा में उसमें और अधिक नकारात्मकता का भाव उत्पन्न करता है। इसलिए, अस्तित्ववादी दर्शन को कैफे फिलासफी, शून्यवाद, उत्कट व्यक्तिवाद भी कहा जाता है। इसके अलावा संसार के सभी उपक्रम को मानव के अधीन समझना तार्किक अतिवादिता है।

जड़ को पूर्ण और मानव चेतना को अपूर्ण मानना हास्यास्पद है। मानव के अस्तित्व और स्वतंत्रता को केंद्र में रखकर अन्य संस्थापित आस्था, आदर्शों, प्राकृतिक नियमों, सिद्धांतो, नैतिक मूल्य और मान्यताओं तथा समाज का पूर्ण खंडन ठीक नहीं है।

मनुष्य जीवन का अस्तित्व न तो पूर्णतः आत्मनिष्ठ हो सकता और न ही वस्तुनिष्ठ वरन यह अन्योन्याश्रित है। जड़ और चेतन का स्पष्ट अंतर श्वेत श्याम जैसा नहीं हो सकता है। आधुनिक विज्ञान और तकनीकी के विकास ने तटस्थ वैज्ञानिक चिंतन और सार्वभौम वस्तुनिष्ठ ज्ञान को आदर्श बना दिया है। इस एकांगी मत ने मनुष्य के विचार और जीवन की दूरी सत्य एवं तात्विक रहस्य से और बढ़ा दी है। कार्य.कारण सिद्धांत ने मानव मन को जकड़कर यांत्रिक बना दिया है। मानव अस्तित्व एवं जीवन एक समस्या नहीं है जिसका समाधान विज्ञान की प्रयोगशाला में उपकरण के माध्यम से ढूंढा जाय। मानव जीवन की पूर्णता केवल समस्या का वैज्ञानिक और तार्किक समाधानों (to have) से नहीं वरन अस्तित्व और रहस्य के साथ एकाकार (to be) हो जानें में है। प्रेम, श्रद्धा, आस्था, करुणा, सेवा, विश्वास एवं रहस्य का आधार बुद्धि, तर्क, विज्ञान या प्रयोग नहीं वरन गहन व्यक्तिगत आत्मिक अनुभूति है। निष्कर्ष यह कि, कोई भी दर्शन अपने में पूर्ण नहीं है और न हि पूर्ण होने का दावा करना चाहिए। जिसे उपनिषदों में नेति - नेति कहा गया है।

❒ **सह-प्राध्यापक**, रसायन शास्त्र

डॉ. हरीश रजक

उच्च शिक्षा में कृत्रिम बुद्धिमत्ता

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) ने पिछले कुछ वर्षों में तेजी से विकास किया है और अब यह उच्च शिक्षा में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। वर्तमान परिदृश्य में AI तकनीक का उपयोग शिक्षण और अधिगम के तरीकों को बेहतर बनाने के लिए किया जा रहा है। इस लेख में हम उच्च शिक्षा में AI की संभावनाओं और चुनौतियों पर चर्चा करेंगे।

आजकल कई ऐसे AI आधारित वेबसाइट्स और एप्लिकेशन उपलब्ध हैं जो उच्च शिक्षा में छात्रों और शिक्षकों के लिए लाभकारी साबित हो रहे हैं। उदाहरण के लिए, **ChatGPT** एक AI चैटबॉट है, जो छात्रों को उनके प्रश्नों के त्वरित उत्तर प्रदान करने, विषयों को समझने में मदद करने, और लेखन में सहायता करने के लिए उपयोग किया जा सकता है। **Coursera** एक प्रमुख ऑनलाइन लर्निंग प्लेटफॉर्म है, जो विश्व के शीर्ष विश्वविद्यालयों द्वारा प्रदत्त पाठ्यक्रमों का एक्सेस प्रदान करता है। **Duolingo** भाषा सीखने के लिए एक लोकप्रिय ऐप है, जो AI का उपयोग करके व्यक्तिगत पाठ्यक्रम बनाता है। **Edmodo** एक शैक्षणिक प्रणाली है जो शिक्षकों और छात्रों को संवाद करने, सामग्री साझा करने, और कार्यों का प्रबंधन करने में सहायक है, जिससे शिक्षण प्रक्रिया को सरल और प्रभावी बनाया जा सकता है। इसके अलावा, **Grammarly** जैसी AI आधारित टूल छात्रों की लेखन क्षमता को बेहतर बनाने में मदद करती है, जो न केवल व्याकरण की जाँच करती है, बल्कि लेखन को अधिक प्रभावी और स्पष्ट बनाने के सुझाव भी देती है। इसी तरह, कई AI आधारित वेबसाइट्स और एप्लिकेशन उच्च शिक्षा प्रणाली के विकास में मदद करने के लिए उपलब्ध हैं।

संभावनाएँ -

1. **व्यक्तिगत शिक्षा:** AI छात्रों के लिए अनुकूलित अध्ययन सामग्री प्रदान करने में सक्षम है। यह छात्रों की गति और समझ के अनुसार अध्ययन सामग्री को बदलता है, जिससे हर छात्र को अपने तरीके से सीखने का मौका मिलता है।

2. **डेटा एनालिटिक्स:** उच्च शिक्षा संस्थानों के पास छात्रों के प्रदर्शन का विशाल डेटा होता है। AI का उपयोग करके, शिक्षकों को यह समझने में मदद मिलती है कि छात्रों को किन क्षेत्रों में कठिनाई हो रही है। इससे शिक्षकों को लक्ष्य आधारित सहायता देने में मदद मिलती है।
3. **ऑनलाइन लर्निंग प्लेटफॉर्म:** COVID-19 महामारी के दौरान, ऑनलाइन लर्निंग प्लेटफार्मों का उपयोग तेजी से बढ़ा है। AI तकनीक ने इन प्लेटफार्मों को अधिक उपयोगकर्ता-अनुकूल बना दिया है, जिससे छात्र अपनी सुविधा अनुसार अध्ययन सामग्री उपयोग कर सकते हैं।
4. **स्मार्ट ट्यूटरिंग सिस्टम:** AI पर आधारित स्मार्ट ट्यूटरिंग सिस्टम छात्रों का प्रदर्शन वास्तविक समय में ट्रैक करते हैं। ये सिस्टम उन्हें विशेष सहायता प्रदान करते हैं, जैसे व्याकरण या गणित की समस्याओं को हल करने में मदद करना।
5. **प्रशासनिक कार्यों में सुधार:** AI तकनीक प्रशासनिक कार्यों को स्वचालित करने में मदद कर सकती है, जैसे प्रवेश प्रक्रिया और छात्र रिकॉर्ड प्रबंधन। इससे समय और संसाधनों की बचत की जा सकती है।

चुनौतियाँ-

1. **गोपनीयता और सुरक्षा:** छात्रों के डेटा को एकत्रित करने से गोपनीयता की चिंता उत्पन्न होती है। यदि AI का उपयोग गलत तरीके से किया जाए, तो यह छात्रों के लिए असुरक्षित वातावरण बना सकता है।
2. **संसाधनों की असमानता:** वर्तमान परिदृश्य में सभी संस्थानों के पास AI तकनीक के समान संसाधन नहीं हैं, इससे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा में असमानता पैदा हो सकती है।
3. **नैतिकता:** AI का उपयोग करते समय नैतिक प्रश्न उठते हैं। यदि AI सिस्टम पूर्वाग्रहित हो, तो यह छात्रों के अनुभव/सीखने की क्षमता को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकता है।
4. **शिक्षकों की भूमिका:** AI के आगमन से शिक्षकों की भूमिका में बदलाव आ रहा है। अगर शिक्षक AI पर निर्भर हो जाएं, तो पारंपरिक शिक्षण कौशल कमजोर पड़ सकते हैं।
5. **प्रशिक्षण की आवश्यकता:** छात्रों और शिक्षकों को AI तकनीकों का उचित उपयोग करने के लिए प्रशिक्षण की जरूरत है। यदि सही प्रशिक्षण नहीं मिलता है, तो वे इस तकनीक को अपनाने में हिचकिचा सकते हैं।

अनुसंधान और विकास में योगदान -

AI का उपयोग उच्च शिक्षा में अनुसंधान और विकास में भी महत्वपूर्ण है। यह शोधकर्ताओं को बड़े डेटा सेट्स का बेहतर विश्लेषण करने में मदद करता है।

1. **डेटा संचालित अनुसंधान:** AI डेटा की संरचना को समझने में मदद करता है। इससे शोधकर्ता नई थ्योरियों और जानकारियों का विकास कर सकते हैं।
2. **विविधता और सहयोग:** AI विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञों को मिलकर काम करने का मौका देता है, जिससे आपसी सहयोग बढ़ाया जा सकता है।
3. **नवीनता और आविष्कार:** AI शोधकर्ताओं को नई तकनीकों को विकसित करने और उन्हें लागू करने के अवसर प्रदान करता है।
4. **वैश्विक समस्या समाधान:** AI का उपयोग जलवायु परिवर्तन, जन स्वास्थ्य, और खाद्य सुरक्षा जैसी समस्याओं पर शोध में किया जा रहा है। इससे छात्र इन समस्याओं के समाधान में भूमिका निभा सकते हैं।

निष्कर्ष -

कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग उच्च शिक्षा में क्रांतिकारी बदलाव ला रहा है। इसकी संभावनाएँ अनगिनत हैं, लेकिन इसके साथ चुनौतियाँ भी हैं। यदि सही तरीके से उपयोग किया जाए, तो AI शिक्षा के अनुभव को और बेहतर बना सकता है।

उच्च शिक्षा संस्थानों को तकनीकी प्रगति और नैतिकता के बीच संतुलन बनाए रखने की आवश्यकता है। इसके लिए सभी को एक साथ काम करना होगा, ताकि हम AI का उपयोग करके एक उत्कृष्ट और सशक्त शिक्षा प्रणाली बना सकें। यदि हम इन संभावनाओं का सही उपयोग करें और चुनौतियों का सामना करें, तो हम एक ऐसा भविष्य बना सकते हैं जहाँ शिक्षा अधिक सरल, व्यक्तिगत और प्रभावी होगी।

❐ **सह-प्राध्यापक**, भैषजिक विज्ञान

डॉ. विकास राजपोपट

उस क्षण के इंतजार में

विकास के नाम पर हमने सब कुछ विकसित कर लिया पर चेतना का विकास कहीं छूट गया है। आज हम एक ऐसी दुनिया में जी रहे हैं जहाँ संचार के माध्यमों की भरमार है। हर पल हर क्षण सूचनाओं का अंबार हमारे सामने इर्द-गिर्द है। हम किसी से जुड़े बिना भी उनसे निरंतर संवाद में रहते हैं। इस ओवर-कम्यूनिकेटेड दुनिया में हमने बाहर से बोझिल भरे-भरे और अंदर से खाली इंसान बना लिए हैं।

सूचनाओं के इस विशाल समंदर की लहरों में खो के हमने अपनी आंतरिक शांति, अपने आत्मिक विकास को खुद से कितनी दूर धकेल दिया है। हम जितना बाहर की दुनिया से संवाद करते गए उतना ही अपने भीतर की दुनिया से कटते चले गए। हम अपने भीतर के मौन से दूर हो गए और उस क्षण के इंतजार में खो गए जहाँ हमें सच्चा आत्मबोध मिल सके।

आज हम तकनीकी रूप से उन्नत हो सकते हैं लेकिन हमारी आत्मा में कहीं एक खालीपन है। हमने विज्ञान टेक्नोलॉजी और आर्थिक विकास के सारे आयामों को छू लिया परंतु आध्यात्मिकता, मानवीय मूल्यों और आत्मिक शांति की ओर कोई ठोस कदम नहीं उठाया।

क्या यह विकास सचमुच हमें समृद्ध बना रहा है या हम बस ऊपरी चमक-दमक से प्रभावित होकर अंदर से खोखले हो रहे हैं? आज आवश्यकता है उस क्षण को खोजने की जहाँ चेतना और आत्मिक विकास को फिर से जगह दी जा सके। हमें केवल संवाद करने वाले नहीं बल्कि सुनने और समझने वाले इंसान भी बनने की जरूरत है। तभी हम वास्तव में एक संपूर्ण समृद्ध समाज का निर्माण कर सकेंगे।

मैं उस दिन का इंतजार कर रहा हूँ जब हम कम तकनीक के साथ संतुष्ट होंगे और अधिक आत्मिक शांति व आध्यात्मिकता की ओर कदम बढ़ाएँगे। जब हमारी प्राथमिकताएँ बाहरी चमक दमक और तात्कालिक सुख से हटकर अंदर की शांति और संतोष की ओर मुड़ेंगी। वह समय आएगा जब हम संवाद से अधिक मौन की शक्ति को समझेंगे और जब हम सूचना की बाढ़ से बचते हुए सादगी और सरलता को अपनाएँगे।

परंतु, क्या यह संभव है कि हम दोनों पक्षों का संतुलन बना सकें? हाँ, यह आदर्श स्थिति होगी जहाँ आंतरिक और बाहरी दोनों का संतुलन बने। यही तो हमारे प्राचीन भारतीय दर्शन का सार है। भारत की प्राचीन जीवन प्रणाली ने हमेशा आंतरिक चेतना और बाहरी विकास के बीच सामंजस्य स्थापित करने की वकालत की है।

सामं वेणुं सुमधुरं पिबन्ति ये कवयः स्मरंती सदा।
धन्यास्ते वयं परं प्रजाः सदा संतुलं तेषु जीविते।

अर्थात, वे धन्य हैं जो जीवन में संतुलन बनाए रखते हैं न केवल बाहरी विकास के प्रति जागरूक रहते हैं बल्कि आंतरिक शांति को भी महत्व देते हैं।

योग और ध्यान की परंपराएँ इस बात पर जोर देती हैं कि कैसे शरीर, मन और आत्मा के बीच संतुलन को बनाए रखा जाए। हमारे प्राचीन ऋषि मुनियों ने बाहरी जगत की चुनौतियों का सामना करते हुए अपने भीतर की शांति को कभी नहीं खोया। यह ज्ञान आज के समय में भी प्रासंगिक है, जहाँ तकनीक और आधुनिकता के बीच हम अपने आत्मिक विकास को खोजने के लिए संघर्ष कर रहे हैं।

वेदों और उपनिषदों में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि भौतिक प्रगति और आध्यात्मिक चेतना का एक साथ विकास ही जीवन का सार है। यह संतुलन हमें एक संपूर्ण मानव बनाता है, जहाँ हम बाहरी दुनिया में सफल होते हैं वहीं आंतरिक दुनिया में भी अपनी शांति और संतोष को नहीं खोते।

आज की वर्तमान दुनिया में भी यदि हम दोनों का सामंजस्य बिठा सकें एवं बाहरी तकनीकी विकास और आंतरिक चेतना का उत्थान करें, तो हम वास्तव में उस आदर्श स्थिति में पहुँच सकेंगे। न केवल हमारे समाज में प्रगति होगी बल्कि हर व्यक्ति के भीतर भी एक गहरा संतुलन स्थापित हो सकेगा।

यह क्षण, यह दिन, तब आएगा जब हम अपने भीतर झाँकेंगे और आत्म-साक्षात्कार को जीवन का प्रमुख उद्देश्य बनाएँगे। मैं उस दिन की प्रतीक्षा कर रहा हूँ, जब तकनीक का स्थान हमारी चेतना के विकास और आंतरिक शांति को मिलेगा। तब शायद हम सच में खुद से जुड़ पाएँगे, उस आत्मिक विकास से, जिसे हमने विकास की दौड़ में कहीं खो दिया है।

❒ **सहायक प्राध्यापक**, पत्रकारिता एवं जनसंचार

डॉ. राजेश मिश्र

संत कवियों की उलटबासी

अनिर्वचनीय आध्यात्मिक अनुभव को व्यक्त करने समझाने की चेष्टा से साधक को कभी-कभी समाज प्रचलित बातों से अलग, विरोधी उक्तियों द्वारा अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करने का ढंग अपनाना पड़ता है, जैसे बिना चाँद के चाँदनी का प्रकाश, बिना सूर्य के चारो और उजाला कम्बल का बरसना और पानी का भींगना, मछली का वृक्ष पर चढ़ जाना आदि और इसके आधार पर ऐसे गूढ़ प्रतीकों की सृष्टि की जाती रही है कि जो "उलटवाँसी" या "विपर्यय" कहते हैं। पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल जी के शब्दों में "जब सत्य की अभिव्यक्ति बिना इन परस्पर विरोधी कथनों के सहारे नहीं हो पाती तो उसे आवश्यक सत्याभास कह सकते हैं।" कभी-कभी इन उलटवाँसियों का प्रयोग प्रतीकार्थ को छिपाने के लिए भी किया जाता है जिसके पीछे आध्यात्मिक मार्ग के रहस्यों का पता अयोग्य व्यक्तियों को न लगने पाए की कवायद काम कर रही होती है। इन उलटवाँसियों को जान बूझकर गढी हुई उलटवाँसियों के रूप में देखा जाता है। सामान्य अर्थों में आध्यात्मिक साधनाओं के रहस्यों को इस तरह की उलटवाँसियों में रखा जाता है| पहले प्रकार की उलटवाँसियाँ सांकेतिक होती हैं तो दूसरे तरह की उलटबासियों का स्वरूप रहस्यमयी हुआ करता है। सांकेतिक उलटवाँसियों में उच्च श्रेणी का काव्य रहा करता है। किंतु गुह्य उलटवाँसियां स्वभावत: काव्यगत सौंदर्य से हीन हुआ करती हैं।

छठवीं शताब्दी में दक्षिण भारत से आलवार संतों से संतों की परंपरा प्रारंभ होती है। ये भक्तिमार्गी संत पुराणों तथा वेदांत के एकेश्वरवाद की परिणति बहुदेववाद में होता देख शैव, वैष्णव, शाक्त, नाथ, तांत्रिक आदि विभिन्न संप्रदाय के रूप में स्थिर होने लगे। जैन और बौद्ध धर्म भी संप्रदायों में विभाजित हो चुका था। इन सभी उपधर्मों में भिन्न-भिन्न प्रकार के बाह्याचार और कर्मकांड युक्त धार्मिक क्रियाओं का अधिक प्रचालन और महत्व था। इन्हीं कर्मकांडों पर विराम लगाने के लिए समन्वयवादी संतों ने सामाजिक जागरण का अलख जगाया। उन्होंने जनसामान्य को कर्मकांड, आडंबर, अंधश्रद्धा, अज्ञान, और कुरीतियों के जाल में फंसी हुई भ्रमित जनता को सहज सत्य का मार्ग दिखाने का कार्य किया। संत परंपरा के सर्वप्रथम पथदर्शक प्रसिद्ध कवि जयदेव थे।

उनसे लेकर 16वीं सदी तक सधना, वेणी, त्रिलोचन, नामदेव, रामानंद, सेना, कबीर, पीपा, रैदास, दादूदयाल, रज्जब जैसे कई संतों ने संतमत को समृद्ध किया। ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम, रामदास आदि संतों की भक्तिधारा ने महाराष्ट्र के सर्वसामान्य जनजीवन को सँवारा और सुधारा। इन संतों ने भक्तिमार्ग के साथ-साथ मानवतावादी विचारधारा को एक नया सार्थक स्वरूप प्रदान किया।आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ में लोकमत एवं वेदमत का जो समन्वय होना आरंभ हुआ था वह भाषा एवं विचार दोनों दृष्टियों से लोकामिमुख हो रहा था। 14 वीं शताब्दी में स्वामी रामानंद ने इस आंदोलन को व्यापक बनाया । उन्होंने भक्ति के लिए वेदशास्त्र, संस्कृत भाषा, वर्णभेद, बाह्याचार, अंधविश्वास आदि को अनिवार्य नहीं माना। उन्होंने निम्न जातियों और स्त्रियों के लिए भक्ति का मार्ग खोल दिया। वस्तुतः उत्तर भारत में भक्ति-आन्दोलन का आरंभ करने और मध्यकालीन सामाजिक व्यवस्था में सुधार लाने का श्रेय रामानन्द को ही है। वे ब्राह्मण थे किंतु उन्होंने वैष्णव धर्म में दो बड़े सुधार किये – एक तो उन्होंने भक्ति मार्ग में जाति भेद की संकीर्णता को मिटाया। उन्होंने स्वयं आगे बढ़कर छोटी समझी जाने वाली जातियों को अपना शिष्य बनाया तथा अपने सम्प्रदाय में शामिल किया। दूसरा उन्होंने संस्कृत की अपेक्षा जनभाषा में अपने मत का प्रचार किया और उपदेश दिया।

स्वामी रामानंद के विचारों से प्रेरित होकर उत्तर भारत में कबीर, महाराष्ट्र में नामदेव, पंजाब में नानक तथा बंगाल में चैतन्य महाप्रभु ने समाज तथा धर्म-सुधार आन्दोलन को गति प्रदान की । इन संतों ने जातिविहीन समाज, रूढ़िवादिता का परित्याग, वाह्याडंबरों का त्याग तथा भक्ति द्वारा शरीर को शुद्ध करने का मार्ग प्रशस्त किया। इस संदर्भ में कबीर ने समाज की भलाई के लिए अन्य संतों से अधिक कार्य किया है। कबीर साहब ने यदि स्वातंत्य एवं निर्भीकता को अधिक प्रधानता दी, तो गुरुनानक ने समन्वय तथा एकता पर विशेष बल दिया और दादूदयाल ने उसी प्रकार सद्भाव और सेवा को श्रेष्ठ माना। नाथपंथ ने वर्ण-व्यवस्था का विरोध किया । सामाजिक और धार्मिक एकता के जिस भवन का निर्माण कबीर, दादू और नानक ने किया था उसे रज्जब साहब ने और मजबूत बनाया । उन्होंने हिन्दू धर्म और इस्लाम धर्म की संकुचित चहारदीवारी को लाँघ कर सृष्टिकर्ता से प्रीति करने का संदेश संसार को दिया । एक ओर मूर्तिपूजा, जप, तप, छापा-तिलक, वाह्याडंबर, अंधविश्वास की प्रधानता थी तो दूसरी ओर हज, नमाज, रोजा आदि पर विश्वास अधिक था। इसके साथ ही साथ दोनों धर्मों में पाखण्ड-प्रवृत्ति का भी समावेश हो गया था। प्रत्यक्ष जाति-पाँति का भेदभाव, वाह्याडंबर के कारण समाज में वर्गगत विषमता और द्वेष की भावना प्रबल थी। इस समस्या को कबीर की भांति पलटूदास ने भी अनुभव किया था और वर्ण व्यवस्था को कायम रखने वालों पर ही प्रहार किया। उन्होंने समाज की आन्तरिक और बाह्य प्रवृत्तियों पर एक साथ प्रहार किया और लोगों को भावना प्रधान होने की प्रेरणा प्रदान की । इस्लाम के सूफी संतों ने भी सामाजिक समरसता का ही संदेश दिया ।

यद्यपि अनेक संत सवर्ण समुदाय से भी हुए हैं किंतु अधिकांश संत नीची समझी जाने वाली जातियों के थे, इसलिए उनके क्रिया-कलापों, धार्मिक सिद्धान्तों, आदि के विरुद्ध सवर्णों एवं धर्माचार्यों का एक बड़ा समुदाय खड़ा था । उन्हें कदम-कदम पर प्रताड़ित किया जाता था । उन्हें समाज का उपेक्षित व्यक्ति समझा जाता था। इसीलिए संतों ने समाज में जाति-प्रथा का विरोध किया था, ऊँच-नीच का भेद-भाव उनके यहाँ नहीं था, समाज का प्रत्येक व्यक्ति समान था। संतों ने अपने इस मानवतावादी विचारों का विरोध होते हुए स्वयं देखा और अनुभव किया था। सवर्णों और वर्ण-व्यवस्था के पक्षधरों द्वारा किए जा रहे इस विरोध की प्रतिक्रिया में संतों ने अपनी वाणियों के माध्यम से जनता को यह संदेश दिया था कि जातिवादी ऊँच-नीच की विचारधारा, बाह्याडंबर, वहुदेववाद आदि स्वार्थपरक नीतियों से संचालित हैं । इसी क्रम में सिद्धों, नाथों और हठयोगियों की निन्दा करने में भी वे पीछे नहीं हैं। वास्तविक संत तो वही है जिसके भीतर मोक्ष, तीर्थ, व्रत, पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक आदि की कामना न हो। उसका न तो कोई मित्र होता है न शत्रु। उसके लिए सभी वर्ण के मनुष्य समान हैं।

संतों की वाणियाँ और उपदेश समाज सुधार तथा जन जागरण के लिए बाद में थी पहले स्थान पर तो कुरीति और अन्ध विस्वास से समाज को बाहर लाने और समाज को आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग का अनुगामी बनाने का प्रयास ही था| वे अपनी सधनाओं के आनुभूतिक रहस्य को संजोने और विषय की गंभीरता को प्रकट रखने के उद्देश्य से उलटबासियों में साधनामूलक स्थितियों तथा दशाओं का उदघाटन करते थे| बाद में चमत्कार प्रदर्शन की लालसा और अतिरिक्त गम्भीरता दिखाने के प्रयास का रोग

उलटबासी को भी लग गई| आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में "संतों पर योगियों का व्यापक प्रभाव था और योगियों की अद्भुत क्रियाएँ साधारण जनता के लिए आश्चर्य तथा श्रद्धा का विषय थीं। योगियों का अपने विषय में कहना था कि वे तीन लोक से न्यारे हैं। सारी दुनिया भ्रम में उलटी बही जा रही है। हठयोग के सिद्धांतों और व्यवहारों का माननेवाले लोग ही रास्ते पर हैं।१-
गोपीनाथ कविराज ने गोरक्ष-सिद्धांत-संग्रह में स्पष्ट किया है कि "एक योग संप्रदाय को छोड़कर शेष सभी मतों की बात उलटी है। नाथ का अंश नाद है और नाद का अंश है प्राण। दूसरी और शक्ति का अंश बिंदु हैं और बिंदु का अंश है शरीर। अत: स्पष्ट ही नाद और प्राण बिंदु तथा शरीर से अधिक महत्वपूर्ण हैं, अर्थात्पुत्रक्रम की अपेक्षा शिष्यक्रम आधिक मान्य है। परंतु दुनिया की रीत इससे उलटी है। वह पुत्रक्रम को प्रमुख मानती है ओर शिष्यक्रम को गौण। दुनिया के अनुसार क्रम है: धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष, पृथ्वी-जल-तेज-वायु-आकाश-ब्रह्मा-विष्णु-शिव आदि; यानी सब उलटा, इसलिए कि जो श्रेष्ठ है उसे पहले रखना चाहिए और जो अपेक्षाकृत कम श्रेष्ठ है उसे बाद में। सही क्रम इससे बिलकुल उलटा होता है। यथा, मोक्ष-धर्म-अर्थ-काम, आकाश-वायु-तेज-जल-पृथ्वी, शिव-विष्णु-ब्रह्मा आदि। फलस्वरूप योगी, तांत्रिक और संत (योगियों के प्रभाव के कारण) दुनिया से उलटी बात कहने लगे। काव्यबद्ध इन्हीं उलटी बातों को "उलटवाँसी' की संज्ञा दी गई है।

लोक में गो-मांस-भक्षण महापाप है जबकि उलटवाँसी में "गो" जिह्वा है और उसे तालु में उलटकर ब्रह्मरंध्र की ओर ले जाना "गो-मांस-भक्षण" है। गंगा, यमुना और सरस्वती से सामान्यत: भारत की तीन नदियों का ज्ञान होता है जबकि उलटवाँसियों में गंगा इड़ा है, यमुना पिंगला और सरस्वती इड़ा पिंगला की मध्यवर्तिनी सुषुम्ना है जिसके अंदर स्थित कुंडलिनी नामक बालरंडा को जर्बदस्ती ऊपर उठा ले जाना ही मनुष्य का परम लक्ष्य है। इसी तरह का एक और उलटबासी है-

अवधू ऐसा ग्यान विचारै।
भेरैं बढ़े सु अधधर डूबे, निराधार भये पारं॥ टेक॥
ऊघट चले सु नगरि पहूँते, बाट चले ते लूटे।
एक जेवड़ी सब लपटाँने, के बाँधे के छूटे॥ २-

साधु अपरिग्रही होते हैं, संतोष ही उनका पूँजी या धन है, वे न्यूनतम खर्च में अपनी गुजर करते हैं और कम से कम साधन-सामान अपने पास रखते हैं। बर्तन के नाम पर लौकी का खोखला बनाकर कमण्डत ले लिया जिसमें कुछ भी लागत न लगी। लकड़ी काट-छील कर खड़ाऊं बना लिये। वस्त्रों के बिना काम चल जाय, शरीर को सर्दी-गर्मी का कष्ट न सहना पड़े इसलिए त्वचा पर भस्म मल ली। अधिक सर्दी पड़ने लगी और जंगलों में हिंसक पशुओं के आक्रमण का भय हुआ तो धूनी जता ती। धूनी जताने की आवश्यकता इसलिए भी पड़ी कि जंगलों में बड़े-बड़े पेड़ उखड़ कर आमतौर से गिरते हैं, पत्थरों में जड़ें गहरी नहीं जातीं, दूसरे बट्टानें इधर-उधर खिसकती रहती हैं, फलस्वरूप पेड़ अपना संतुलन खो बैठते हैं और एक ओर झुककर गिर पड़ते हैं। उनके गिरने से निकलने तक का रास्ता बन्द हो जाता है। मानव एवं पशु दोनों को ही इनसे असुविधा एवं कष्ट का ही सामना करना पड़ता है। ऐसी दशा में यह भी उस प्रदेश के लिए एक सेवा कार्य ही है कि उन गिरे हुए पेड़ों को हटाकर जला दिया जाय। जताने के अतिरिक्त वहां उनका कोई उपयोग भी नहीं हो सकता। इससे उपस्वी को अपना शीत-निवारण, हिंसक पशुओं से रक्षा, भोजन बनाने की सुविधा तथा जंगल साफ कर देने की सेवा का प्रयोजन पूरा करने का सहज अवसर मिल जाता है। इसलिए पूनी जताना भी आवश्यक था।
जंगतों में मकान बनाना कठिन था, इसलिए फूंस की झोंपड़ी बनाना या जमीन खोदकर गुफा बना लेना सुविधाजनक होता है। जंगलों में अपनी मौत मरे हुए हिरन, सिंह, व्याघ्र आदि के शरीर पड़े होते हैं, तो उस प्रदेश में निवास करने वाले उनका चर्म उत्तार लेते हैं और उनसे अपने ओढ़ने-बिछाने, पहनने आदि की आवश्यकता पूरी कर लेते हैं। यह सभी बातें वनवासी जीवन के उपयुक्त साधारण सी रहने संबंधी व्यवस्थायें हैं। यदि जंगल में न रहकर बस्ती में रहना है तो इनमें से किसी भी वस्तु की आवश्यकता नहीं रह जाती वरन् सच तो यह है कि यह उपकरण उसी प्रकार अनुपयुक्त हो जाते हैं जैसे ग्रीष्म ऋतु में सर्दी के प्रयोग होने वाले भारी तथा कसे हुए वस्त्र।

ऋषियों का महान् कर्तव्य - चरक, सुश्रुत, वागभट्ट, धन्वन्तरि, अश्विनीकुमार आदि ऋषियों ने चिकित्सा विज्ञान, शल्यक्रिया, वनस्पति अन्वेषण आदि शोध कार्यों में अपना जीवन घुताया और फत्तस्वरूप मानव प्राणी की शारीरिक व्यथाओं का हल निकल सका। शिल्प ज्योतिष, रसायन, कृषि, संगीत, भाषा, विधि, वाहन आदि अनेक विज्ञान की शाखा-प्रशासाओं की वह शोध उन्होंने की जिसका लाभ आज भी समस्त संसार उठा रहा है। समाज-विज्ञान, मनोविज्ञान्, योग. विज्ञान, भाव-विज्ञान, धर्म-विज्ञान आदि विचार विज्ञान की अगणित शाखा प्रशाखाओं को उनने जन्म

दिया। कितने वेद वैज्ञानिक, शोधकर्ता, लगनशीत, कर्मठ एवं परोपकारी थे। नर-नारायण की सेवा में अपना सर्वस्व समर्पित करने की कितनी महान् साधना की थी उन्होंने। उनके उपकार का प्रत्युपकार चुका सकना संसार के लिए संभव नहीं। जब तक सूर्य-बन्द्र विद्यमान है, उनके महान् कर्तव्य के लिए मानव जाति सदा उनको श्रद्धापूर्वक स्मरण करते हुए अपना मस्तक झुकाती रहेगी। कर्तव्य और उत्तरदायित्वों का पालन यदि ऋषियों ने अपने इन सामाजिक उत्तरदायित्वों को तिलांजति दे दी होती और आज के साधु-बाबाओं की तरह संसार को मापा, मिध्या, भ्रम, प्रपंच, भवसागर कह कर इससे दूर रहने का प्रयत्न किया होता, कर्तव्यों को जोड़ बैठने का नाम त्याग माना गया होता तो भारतीय इतिहास का गौरवास्पद स्वरूप बनता ही नहीं, अपनी ऋद्धि-सिद्धि और स्वर्ग मुक्ति के जंजाल में उलझे होते तो उनके द्वारा संसार का कोई हित साधन सम्भव न हुआ होता, भारतीय समाज के उत्कर्ष में वे कोई योगदान न दे सके होते। भगवान बुद्ध ने सारे जीवन भ्रमण करके धर्म प्रचार किया। जब उनका मरण समय आया तब उनके शिष्यों ने पूछा- तथागत, आप तो मुक्ति के अधिकारी बनेंगे। बुद्ध ने कहा- जब तक एक भी प्राण भव-वन्धनों में बंधा हुआ है तब तक में कदापि मुक्ति स्वीकार नहीं करूंगा। बार-बार जन्म लूंगा और मरूंगा और निरन्तर विश्व-मानव की सेवा करता राहूंगा। अकेले बुद्ध ही क्यों, शंकराचार्य, दयानन्द, विवेकानन्द, गांधी, गुरुगोविन्दसिंह, समर्थ गुरु रामदास आदि साधुओं ने कितने महत्व के कार्य किये हैं, प्राचीन काल में व्यास, वशिष्ठ, विश्वामित्र, अत्रि, भारद्वाज, गौतम्, कपिल, कणाद आदि ऋषियों ने अपने महान् कर्तव्य के द्वारा भारत ही नहीं अपितु सारे संसार को प्रगति के पथ पर अग्रसर करने में आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की थी। उनके विचार यदि आज जैसे पलायनवादी रहे होते, संसार को माया जाल बताकर किसी कोने में जिन्दगी के दिन काटने के लिए चुपचाप जा छिपे होते तो उनकी क्या महत्ता रहती और उस तरह की साधुता अपनाने से उनका या संसार का क्या भला होता?

संत कवियों ने सामाजिक धार्मिक क्षेत्र में व्याप्त परंपरागत रूढ़ियों, मान्यताओं, एवं विचारधाराओं का कड़ा विरोध किया और समानता तथा सौहार्द के भाव व्यंजित करने का प्रयास किया| उन्होंने ऐसे समाज की कल्पना की, जो ऊँच-नीच की भावना से सर्वथा शून्य हो, जो ब्राह्मण-शूद्र,हिन्दू-मुस्लिम के भेद भाव से ऊपर हो|उनकी वाणी आज भी सम्पूर्ण मानवता को यह सन्देश देती है कि हमें हर प्रकार के भेद-भाव से ऊपर एक स्वस्थ समाज के निर्माण हेतु प्रयास करते रहना चाहिए| अपनी वाणियों को विशेष ढंग से कहने के पीछे उनका यही प्रयास रहा है कि समाज उनकी वाणियों को और साधना की स्थितियों को उचित भाव-स्थिति तक पहुचने के बाद ही अनुभूत कर सके और उसी तरह या उससे ऊपर की साधना कर सके ।

उलटबासी आनुभूतिक सच और सैद्धांतिक बातों को मूल रूप में सुरक्षित रखने का एक प्रयास मात्र है उसमें रहस्य और चमत्कार की सायास योजना खोजना उन संतों की वानियों के साथ अन्याय होगा। रहस्य और चमत्कार गूढता के सहज लक्षण के रूप में हैं| कूट-पद और उलटबासी उस समय की सामाजिक स्वीकृति में थे कवियों की एक परिपाटी थी जहाँ यह किया जाता था जिसके प्रभाव से बाकी कवियों ने भी अपनी रचनाओं में कूट-पद और उलटबासियों का प्रयोग करने का प्रयास किया है सूरदास जी ने भी बहुत से कूट-पद गाये हैं जहाँ भावों और अनुभूति की बातों की विशेष व्यंजना का प्रयास ही मुख्य है। संत समाज में सबसे लोकप्रिय संत कबीर को माना जाता है। कबीर ने उलटबासियों का प्रयोग साधना और रहस्य की अनुभूति को उस बिरले के लिए बचाए रखने की कोशिश की है जो उस आनुभूतिक गहराई को महसूस करने का सही पात्र है। कबीर की साखी संत मत और लोकजीवन की अनुभूतियों को एक साथ घुल-मिलकर तौयार हुई है। वह सायास योजना नही बल्की हृदयानुभूति की उच्चतम भाव स्थितियों का सहज उच्छलन है। कबीर ने जीवन की उन सभी भाव स्थितियों को विषय बनाया जहाँ सामान्य मनुष्य दुविधा संकोच और भ्रम में होता है और चाहकर भी स्वयं को उनसे बाहर नहीं रख पाता। यही कारण है कि कबीर हमारे वर्तमान में भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने हमारे अतीत में।

सन्दर्भ ग्रन्थ :-

1- कबीर, तृतीय संस्करण, पृ. 80-81

2- कबीर ग्रंथावली, ना.प्र. सभा, 11वाँ संस्करण, पृ. 110

3- आचार्य शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास

4- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य की भूमिका

5- संत साहित्य : पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल

❒ **सहायक प्राध्यापक**, अस्थायी (हिंदी)

"सार्वजनिक जीवन के लगभग पचास वर्ष के अनुभव के बाद आज मैं यह कह सकता हूँ कि अपने देश की सेवा दुनिया की सेवा से असंगत नहीं है-इस सिद्धांत में मेरा विश्वास बढ़ा ही है। यह एक उत्तम सिद्धांत है। इस सिद्धांत को स्वीकार करके ही दुनिया की मौजूदा कठिनाइयाँ आसान की जा सकती हैं और विभिन्न राष्ट्रों में जो पारस्परिक द्वेषभाव नजर आता है, उसे रोका जा सकता है।"[1] -महात्मा गाँधी

डॉ. अखिलेश गुप्ता

सार्वदेशिक सत्ता और कविता

शोध सारांश :

पिछले कुछ दशकों से अनेक वाद और प्रत्यय गढ़े जा रहे हैं और उनकी मार्फत ऐसा दावा किया जा रहा है कि सार्वदेशिक सत्ता की गतिविधियों से परिचित होने के लिए वे मुनासिब माध्यम हैं। इन वादों और प्रचारों ने आधुनिकता, उत्तर-आधुनिकता, संरचनावाद, उत्तर-संरचनावाद और विखंडनवाद जैसे नए-नए विमर्शों को जन्म दिया। इसके उपरांत भी समकालीन कवि और आलोचक महात्मा गाँधी द्वारा सुझाए गए वर्षों के अनुभव-जनित उपर्युक्त विचार की ओर अब मानो वापसी कर रहे हैं- *"कविता में आज यह समझ विकसित हुई है कि जो अनुभव स्थानीय नहीं है, वह सार्वदेशिक नहीं हो सकता और जो अनुभव एक दिये हुए समय के निश्चित फ्रेम-वर्क में नहीं है, वह शाश्वत और सार्वकालिक भी नहीं है।"*

बीज शब्द :

समकालीन कविता, सार्वदेशिक सत्ता, स्थानीय, सार्वकालिक, वीरेन डंगवाल, उदय प्रकाश, ग़ालिब, श्रीकांत वर्मा, साम्राज्यवाद, देशप्रेम, ग्राम स्वराज्य, हरिशंकर परसाई, शमशेर बहादुर सिंह, मैनेजर पाण्डेय, मुक्तिबोध, रघुवीर सहाय, राजेश जोशी, विजय कुमार।

सार्वदेशिक सत्ता की समझ के लिए विभिन्न जटिल संरचनाओं, वादों और सिद्धांतों के बावजूद महात्मा गाँधी के विचार सार्वकालिक सच साबित हुए हैं। विभिन्न राष्ट्रों के बीच वैमनस्य के

बजाए त्याग, सेवा और प्रेम के माध्यम से उन्होंने दुनिया से जुड़ने का तरीका सुझाया। समकालीन कवि **वीरेन डंगवाल** कबीर और महात्मा गाँधी के द्वारा सुझाए गए त्याग, सेवा और प्रेम के भाव को अंगीकार कर स्व-विवेक जाग्रत करने का आह्वान करते हैं-

"पोथी-पतरा-ज्ञान-कपट से बहुत बड़ा है मानव

कठमुल्लापन छोड़ो, उस पर भी तो तनिक विचारो"[3]

मानव-प्रेम की राह से होकर देश और दुनिया की चिन्ता करने वाले **महात्मा गाँधी** वैश्विक सत्ता की साम्राज्यवादी नीति से बेख़बर नहीं थे। उनका यह अंदेशा रहा कि ब्रिटिश उपनिवेशवाद की कारा से मुक्त होने के उपरान्त भारत किसी दूसरे वर्चस्वशाली देश की या तो अधीनता स्वीकार कर लेगा अथवा अपने से कमज़ोर किसी दूसरे देश पर अपना साम्राज्य स्थापित कर सकता है; क्योंकि सत्ता अक्सर इसी दुर्नीति की राह पर चलती है। उन्होंने स्पष्ट किया था कि *"मैं देशप्रेमी हूँ, क्योंकि मैं मानव-प्रेमी हूँ। मेरा देशप्रेम वर्जनशील नहीं है। मैं भारत के हित की सेवा के लिए इंग्लैंड या जर्मनी का नुकसान नहीं करूँगा। जीवन की मेरी योजना में साम्राज्यवाद के लिए कोई स्थान नहीं है।"* इन्हीं विचारों के आधार पर पश्चिम में स्थापित प्रजातंत्र को उन्होंने *'ज़रा हलके रंग का नाज़ी और फ़ासिस्ट तंत्र'* माना; जहाँ प्रजातंत्र, साम्राज्यवाद की चाल को ढकने के लिए एक आवरणमात्र है। ऐसे आडंबरों को हटाकर सचाई से अवगत कराने का यथासंभव प्रयत्न उपनिषद् युग से ही ऋषि-मुनियों ने अपना दायित्व समझा है-

"हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितम् मुखम्
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।"

'सत्य का मुख स्वर्ण के पात्र से ढका हुआ है, इसलिए हे पोषणकर्ता ! सत्य और धर्म को देख सकने के लिए आप उस आवरण को हटा दें!' प्रजातंत्र-रूपी खोल के भीतर सक्रिय साम्राज्यवाद की चाल को आधुनिक भारत में महात्मा गाँधी भाँप रहे थे।

इस प्रपंच के कारण कालान्तर में अंतरराष्ट्रीय पैमाने पर व्यापक बदलाव घटित हुए। इस मानी में पश्चिम के कुछ उत्तर-आधुनिक चिंतकों के अभिमतों का संक्षेपीकरण करते हुए **उदय प्रकाश** का कहना है- *"इन परिवर्तनों का सबसे बड़ा कारक है प्रविधि (टेक्नॉलॉजी) में परिवर्तन। अगर यंत्र (मशीन) की कोख से पूँजीवाद और समाजवाद जैसी दो जुड़वाँ, लेकिन परस्पर वैकल्पिक संतानों का जन्म हुआ, तो उसी तरह विद्युत (इलेक्ट्रिक) से अणुविद्युत (इलेक्ट्रॉनिक) प्रविधि में विकास ने इन नयी परिवर्तन-शृंखलाओं को पैदा किया।"* वास्तविकता यह है कि संपूर्ण विश्व का विभाजन जब पूँजीवाद और समाजवाद के आधार पर दो गुटों में हो गया, तो *'तीसरे विकल्प'* की किसी भी देश को उम्मीद तक नहीं थी। छोटे-छोटे देश या तो पूँजीवाद की शरण में चले जाते थे अथवा समाजवादी व्यवस्था के साथ अपनी आत्मीयता प्रदर्शित करते। इन दो में-से एक चुन सकने की आज़ादी के बरअक्स कविता तो विकल्पविहीन समर में भी नए-नए विकल्प तलाशती है। प्रमाण के तौर पर ग़ालिब का यह शे'र-

"हुई मुद्दत कि ग़ालिब मर गया, पर याद आता है

वह हर इक बात पर कहना, कि यों होता तो क्या होता"

अंततः भारत के प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू द्वारा मध्यम-मार्ग की खोज भारत को *'गुटनिरपेक्ष गणराज्य'* के तौर पर स्थापित करने में सहायक सिद्ध हुई। निश्चय ही इस *'गुटनिरपेक्षता'* ने अन्य देशों के सामने *'तीसरा विकल्प'* प्रस्तुत किया। उसी तरह *'विद्युत (इलेक्ट्रिक) से अणुविद्युत (इलेक्ट्रॉनिक) प्रविधि के विकास'* क्रम के संदर्भ में भी **श्रीकान्त वर्मा** के *'तीसरे रास्ते'* की तलाश याद आती है—

"मित्रो,/तीसरा रास्ता भी/है-/मगर
वह/मगध,/अवन्ती/कोसल/या
विदर्भ/होकर नहीं/जाता।"

इन सारी परिस्थितियों के बीच राष्ट्रीय एवं सार्वदेशिक सत्ता संरचना में दो व्यापक परिवर्तन घटित हुए—पहला, भारतीय निर्वाचन प्रणाली के अंतर्गत पहली बार केरल में कम्युनिस्ट पार्टी ने निर्वाचित होकर 1957 में सरकार बनायी। आज़ादी के ठीक दस साल बाद कम्युनिस्ट नेता ई.एम.एस. नंबूदरीपाद केरल के मुख्यमंत्री के रूप में नियुक्त हुए। उस वक्त इस जीत ने पूरी दुनिया का ध्यान अपनी तरफ खींचा था। समाजवाद के प्रति आस्था के कारण नेहरू केरल में कांग्रेस की हार से विचलित नहीं हुए। जनता द्वारा निर्वाचित पार्टीगत वैविध्य के इस प्रयोग का उन्होंने सम्मान किया। ई.एम.एस. नंबूदरीपाद ने केरल में भूमि सुधार अध्यादेश और शिक्षा विधेयक पेश किया; और चर्च के अधीन चलने वाले स्कूलों और कॉलेजों पर नकेल कसना शुरू कर दिया। वह चाहते थे

कि निजी स्कूलों और कॉलेजों में वेतन बेहतर हो, जिससे कामकाज का अच्छा वातावरण बन सके।

इंटरनेट की वेबसाइट पत्रिका *'लल्लनटॉप'* में प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार उस दौरान, *"बहुत सारे स्कूल चलाने वाले कैथोलिक चर्च को लगा कि यह उनके 'अधिकारों' का हनन है। इसी तरह धनी 'नायर' समुदाय, जिनके बहुत सारे स्कूल-कॉलेज थे, भी चिढ़ गए। ---मौके की मासूमियत भरी कुंठा को लोकल कांग्रेस नेता भाँप गए। अभी-अभी चुनाव हारे थे। मौका मिल गया। सबको इकट्ठा किया और आंदोलन शुरू कर दिया। आंदोलन को नाम दिया, स्वतंत्रता संघर्ष। ...पूरे राज्य में दंगे का माहौल हो गया। ...केरल की सरकार को गिराने का फैसला कर लिया। कहते हैं कि नेहरू का मन नहीं था, पर इंदिरा गाँधी का दबाव था। वहीं इंदिरा के पति फिरोज गाँधी तो इस बात पर भड़क गए कि वो सरकार गिराने के पक्ष में बिल्कुल भी नहीं थे।"* सन् 1959 में केन्द्र सरकार द्वारा भारतीय संविधान के विवादास्पद अनुच्छेद 356 का प्रयोग करते हुए केरल की कम्युनिस्ट सरकार को खारिज कर दिया गया। जबकि इस चुनाव परिणाम सेपूर्व अमेरिकी राजदूत एल्सवर्थ बंकर की जीवनी के अनुसार, *"वाशिंगटन में अलार्म घंटियाँ बजीं।"* भारत के प्रधानमंत्री का यह असमंजस और कम्युनिस्ट सरकार को खारिज कर देने के लिए इंदिरा गाँधी द्वारा की गई जिद के संदर्भ में **श्रीकान्त वर्मा** की *'तीसरा रास्ता'* शीर्षक कविता याद आती है-

"मित्रो-
दो ही
रास्ते हैं:
दुर्नीति पर चलें
नीति पर बहस बनाये रखें
दुराचरण करें
सदाचार की
चर्चा चलाये रखें"

दूसरा, विश्व रंगमंच पर द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ जैसी दो महाशक्तियों के बीच अपने निहित स्वार्थ की सिद्धि के लिए मतभेद उत्पन्न हो हुआ। आगे चलकर इस मतभेद के कारण भयानक तनाव की स्थिति पैदा हो गयी। जब भारत में साम्यवाद की सरकार गिरायी जा रही थी, तब विश्व रंगमंच पर *'शान्तिविहीन शान्ति'* की यह लीला निर्बाध ढंग से संचालित हो रही थी। सन् 1991 में सोवियत संघ के विघटन और निर्गुट देशों की शक्ति छीज जाने से पूरे संसार में प्रायः एकध्रुवीय स्थिति कायम हो गयी। आज अमेरिका *'सुपर पॉवर'* के रूप में शीर्षस्थ है।

इस चरम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए **हरिशंकर परसाई** के अनुसार अमेरिका ने काफी कहर बरपाया है- *"खतरों से अपने हितों की रक्षा करने के लिए अमेरिका को उपाय करने पड़ते हैं। वह पैसे से दबाता है। अनाज से दबाता है। तकनीक से दबाता है। सी.आई.ए. षड्यंत्र करता है। सरकारें पलटायी जाती हैं। हत्या कराते हैं। देशों को आपस में लड़वाया जाता है। सारी दुनिया में जगह-जगह सैनिक अड्डे बनाए जाते हैं। खुला हस्तक्षेप किया जाता है। अफ्रीकी देश आजाद न हो जाएँ कहीं, हो भी जाएँ, तो वहाँ लोकप्रिय सरकार न रह पाए। लोकतंत्र तो कहीं किसी भी हालत में नहीं रहना चाहिए। बांग्लादेश में शेख मुजीब की हत्या करके वहाँ लोकतंत्र खत्म कर दिया। चिली में एलेंडे की निर्वाचित सरकार को गिरा दिया। लैटिन अमेरिका में प्रगतिशील आंदोलनों को कुचल दिया जाना चाहिए। वियतनाम में साम्यवाद के प्रचार को रोकने के लिए लाखों आदमी मार डाले। तबाही ढहाई। वहाँ से पिटकर भागे, यह बात जरूर दुखदायी है। ...जहाँ इस्लाम है, वहाँ तेल है। ...इस सारे तेल-क्षेत्र की रखवाली अमेरिका का हवलदार ईरान का शाह करता है। ...इधर अफगानिस्तान में 1978 की साम्यवादी क्रांति के बाद कार्ल मार्क्स घुस आया है। अमेरिकी हितों को इसी से खतरा है।"* इस कथन के व्यंग्यात्मक लहजे में होने के बावजूद अंत तक इससे पाठक के हृदय में विषाद भर उठता है। श्रेष्ठ कविता के संदर्भ में तो यह कहा भी गया है कि वह करुणा और व्यंजना के साहचर्य से संभव होती है। ऐसे में समकालीन कविता वैश्विक सत्ता संघर्ष में घटित हो रहे इन प्रसंगों से अछूती कैसे रह सकती है ? **शमशेर बहादुर सिंह** अमेरिका के इस चरित्र को बेनकाब करते हुए आम जन को इससे आगाह कर देना चाहते हैं-

"हद्दे पाकिस्तान में सी. आई. ए. की साज़िशें
सरहदी फ़ौजों को हमलावर बनाना देखिए!

हिन्द महासागर के बीचोंबीच डियागोगार्सिया
हिन्द, ईरान, अफ़रीका होंगे निशाना देखिए!
ऐटमी बेड़े, हवाईयान हज़ारों ही जमा
क्या है अमरीका की ताक़त का ठिकाना देखिए!
परचमे इस्लाम के हैं साथ अमरीकी निशान
हो गया कुर्बान डॉलर पर ज़माना देखिए!
अहद-ओ-पैमा अम्न की ख़ातिर है या है बहर-ए-जंग
असलियत में क्या है अमेरीका का चेहरा देखिए!"

अराजकता की इस स्थिति में भी अमेरिका का सार्वदेशिक आतंक छाया हुआ है। इस आतंक को फैलाने के पीछे कारण केवल उसका परमाणु हथियारों से संपन्न होना कतई नहीं माना जा सकता। अगर ऐसा होता तो अमेरिका के साथ-साथ और भी कई देशों, जिनके पास ऐसे हथियार हैं-के आतंक कोभी आनुषंगिक ढंग से एक साथ हम महसूस कर रहे होते। मगर ऐसा नहीं है। उसने जनसंचार, प्रौद्योगिकी और सांस्कृतिक प्रभुत्व की रणनीतियों के माध्यम से समस्त देशों के साहित्य, संस्कृति, भाषा और मिथकों तक को अपने हिसाब से प्रभावित करना शुरू कर दिया। **हर्बर्ट मार्क्यूज** के अनुसार, *"वर्चस्ववादी ताक़तें संस्कृति को एक राजनीतिक हथियार के रूप में इस्तेमाल करती हैं और जनचेतना के निजी 'स्पेस' पर सत्ताधारियों का नियंत्रण बढ़ता जाता है। सांस्कृतिक रूपों के निर्माण में प्रायोजना, छल-कपट और उलट-फेर की प्रविधियाँ काम करती रहती हैं। जनसंचार माध्यम सत्ता के आततायी रूप को जनमानस में स्वीकार्य बनाते हैं।"*

गाँधी द्वारा सुझाए गए *ग्राम स्वराज* के मार्ग का अनुसरण कर भारत इस आतंक से अप्रभावित रह सकता था। उनका यह मानना था कि *"पूँजीवालों से पूँजी हिंसापूर्वक छीनी जाय, इसके बजाय यदि चरखा और उसके सारे फलितार्थ स्वीकार कर लिये जायें, तो वही काम हो सकता है। चरखा हिंसक अपहरण की जगह ले सकने वाला अत्यंत प्रभावकारी साधन है। ज़मीन और दूसरी सारी संपत्ति उसकी है, जो उसके लिए काम करे। दुःख इस बात का है कि किसान और मज़दूर या तो इस सरल वाक्य को जानते नहीं हैं या यों कहो कि उन्हें इसे जानने नहीं दिया गया है। ...पतित-से-पतित लोगों को भी मुनासिब तालीम दी जाये, तो अहिंसक साधनों द्वारा सब प्रकार के अत्याचारों का प्रतिकार किया जा सकता है। अहिंसक असहयोग ही उसका मुख्य साधन है। कभी-कभी असहयोग भी उतना ही कर्तव्य रूप हो जाता है, जितना कि सहयोग।"*[15] वह हमारे साहित्य, भाषा और मिथकों तक में बिखरी लोक की छटा के अभिनव ढंग के मर्मज्ञ एवं प्रशंसक रहे। अधिसंख्य अवाम द्वारा हिन्दी व्यवहृत किये जाने के कारण उसे राष्ट्रभाषा का दरजा दिलाने के लिए उन्होंने मुहिम छेड़ रखी थी। वह धर्मों में वर्णित मिथकीय पात्रों तक में परिवर्तनकामी आशय खोज निकालते थे। **मैनेजर पाण्डेय** के अनुसार, *"गाँधी जी तुलसीदास और 'रामचरितमानस' का बहुत सम्मान करते थे। कुछ लोगों ने पत्र लिखकर गाँधी जी से यह प्रश्न किया था कि स्वाधीनता आंदोलन के समय एक ऐसी कृति की प्रशंसा क्या उचित है, जिसमें विभीषण के देशद्रोह की तारीफ की गई है। गाँधी जी ने विभीषण के चरित्र की राजनीतिक व्याख्या करते हुए कहा था, 'विभीषण में तो मैं कोई दोष नहीं पाता हूँ। विभीषण ने अपने भाई के साथ सत्याग्रह किया था। विभीषण का दृष्टान्त हमें यह सिखाता है कि अपने देश या अपने शासक के दोषों के प्रति सहानुभूति रखना या उन्हें छिपाना देशभक्ति के नाम को लजाना है, इसके विपरीत देश के दोषों का विरोध करना सच्ची देशभक्ति है।' गाँधी जी के इस कथन में देशभक्ति की नयी व्याख्या है।"*

गाँधी जी द्वारा सुझाए मार्ग को त्यागने में हमें वक़्त नहीं लगा,क्योंकि अभिजात संस्कृति की नकल करना हमारा प्रधान व्यसन रहा है। इसलिए खुले साँड की तरह आक्रान्ता एकध्रुवीय महाशक्ति अमेरिका की संस्कृति के प्रभुत्व को स्वीकार करने में हमने देरी नहीं की। अमेरिका जैसी महाशक्ति बनने के दिवास्वप्न को साकार करने और भारत को आर्थिक रूप से अत्यंत समृद्ध बनाने के मकसदसे उसे भारत आगमन हेतु न्यौता दिया जा रहा है। देश के कर्णधारों द्वारा यह दिवास्वप्न दिखाना आज भी सतत जारी है। पाँच साल बाद चेहरे भले ही बदल जाएँ, लेकिन चरित्र कमोबेश सबका वही रहता है। निजी स्वार्थ और लोभ के वशीभूत होकर देश का बंटाधार करने में ये कोई कसर नहीं छोड़ते। **मनमोहन** की कविता *'देश हमारा'* की केन्द्रीय अंतर्वस्तु देश के कर्णधारों की इसी मानसिकता को उजागर करती है—

"बम से अपने बच्चे खेलें
दुनिया को हाथों में लेलें
भूख, गरीबी और बेकारी
ख़ाली-पीली बातें सारी

देश-वेश और जनता-वनता
इन सबसे कुछ काम न बनता
ज्यों-ज्यों हम बिजिनिस को चमकाएँ
महाशक्ति हम बनते जाएँ
हम ही क्यों अमरीका जाएँ
अमरीका को भारत लाएँ"

यह महज संयोग नहीं कि व्यंग्य विधा के मार्फ़त **हरिशंकर परसाई** इसे *'महायज्ञ'* की संज्ञा से अभिहित करते हैं— *"यह महायज्ञ है, अमेरिकी हितों की रक्षा के लिए। इसमें हवन होना है कुछ द्रव्यों का, जिससे यज्ञ-धूम आकाश में छा जाए और देवता प्रसन्न हों। इस यज्ञकुंड में भारत को झोंक देने की कोशिश हो रही है। गनीमत है कि अब 'असली' गुट-निरपेक्षता वाली सरकार नहीं रही।"*

भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू द्वारा अपनायी गयी गुट-निरपेक्षता का पथ अब भ्रष्ट हो चुका है। साम्यवाद को समग्र विश्व से निर्मूल कर देने पर भी आज अमेरिका आमादा है। इसलिए महाआख्यान को खारिज करने के निमित्त उसने लघु-आख्यानों पर जोर देना शुरू किया। बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध का वैचारिक परिदृश्य स्पष्ट करते हुए **विजय कुमार** लिखते हैं— *"हेगेल का कहना था कि केवल समग्रता ही सत्य है। एडोर्नो कहते हैं कि 'समग्रता सबसे बड़ा झूठ है'।"* लेकिन इससे एक बड़ा उपकार यह हुआ कि आज स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श एवं किन्नर विमर्श जैसे सदियों से उपेक्षित विषयों पर सबाल्टर्न अध्ययन शुरू हो गया। अगरचे इस दौरान यह विशेष ध्यान रखा गया कि कहीं ये सब आपस में मिलकर एकजुट न हो जाएँ। इसलिए इन सारे विमर्शों को एक-दूसरे के ख़िलाफ़ खड़ा किया गया।

ऐसे में सामाजिक आधार पर समानता कैसे हासिल की जा सकती है ? इस भाव को भुलाकर स्त्री बनाम पुरुष, सहानुभूति बनाम स्वानुभूति, आर्य बनाम अनार्य एवं हिन्दू बनाम विधर्मी जैसे तमाम समीकरणों में उलझाए रखने की पुरजोर कोशिश का प्रयोजन भी विषमता है। उन्होंने हमारे दर्शन, मिथक, आख्यान एवं साहित्य तक को *'आउटडेटेड'* करार देते हुए इनका उपहास किया। ऐसी अराजक स्थिति में साहित्य की अतिरिक्त जिम्मेदारी से सचेत करते हुए **अर्न्स्ट फिशर** का कहना है कि *"उसे इसी 'अव्यवस्था' (डिसऑर्डर) में किसी 'व्यवस्था' का प्रतिस्थापन करना है। इसी अराजकता में उसे कोई संबद्धता खोजनी है। इसी बिखराव और विखंडन में उसे किसी संबंध-सूत्र और सृजन का आविष्कार करना है। 'मिथक' ही सही, लेकिन उस 'यथार्थ' की उसे पुनर्व्याख्या करनी है। नये चरित्रों, पात्रों, शक्तियों, सत्ताओं को पहचानना है। पीड़ा और संघर्ष के चिरंतन मानव इतिहास का आगामी अध्याय लिखना है।"*[20] प्रमुख रूप से मुक्तिबोध एवं रघुवीर सहाय ने इस अतिरिक्त जिम्मेदारी को महसूस किया। *'चकमक की चिनगारियाँ'* शीर्षक कविता की पंक्तियाँ अराजकता के माहौल में एकता की खोज करती हैं—

"अरे ! जन-संग-ऊष्मा के
बिना, व्यक्तित्व के स्तर जुड़ नहीं सकते।
प्रयासी प्रेरणा के स्रोत,
सक्रिय वेदना की ज्योति,
सब साहाय्य उनसे लो।
तुम्हारी मुक्ति उनके प्रेम से होगी।
कि तद्गत लक्ष्य में से ही
हृदय के नेत्र जागेंगे,
व जीवन-लक्ष्य उनके प्राप्त
करने की क्रिया में से
उभर ऊपर
विकसते जाएँगे निज के
तुम्हारे गुण
कि अपनी मुक्ति के रास्ते
अकेले में नहीं मिलते"

वहीं रघुवीर सहाय टुकड़ों में विभाजित समाज की शक्तिहीनता से आहत होकर एकता की आवश्यकता शिद्दत से महसूस करते हैं—

"अकेले लोगों की टोली
देर तक टोली नहीं रहती
वह बिखर जाती है रक्षा की खोज में
रक्षा की खोज में पाता है हर एक अपनी-अपनी मौत"

प्रौद्योगिकी, सैन्य शक्ति और संचार माध्यमों के अभूतपूर्व विकास ने अमेरिका के विश्वालिंगन के स्वप्न को संभव किया, जिसके तहत

समूची दुनिया को अपने शिकंजे में लेने के लिए उसने जाल बिछाना प्रारंभ किया। हनुमान की विश्वव्यापी उड़ान की तरह आज हम जिसके सामने नतमस्तक हुए जा रहे हैं— *'भूमंडलीकरण'* को उसी प्रक्रिया का नामकरण मात्र कह सकते हैं। पलक झपकते ही वह आज भारत, कोरिया, फिलस्तीन, जापान, सीरिया, इराक, ईरान,अफगानिस्तान अथवा पाकिस्तान कहीं भी हाजिर हो सकता है। भारत के संदर्भ में असल बात यह है कि औद्योगिक विकास के नाम पर अमेरिका ने आदिवासियों के घर उजाड़ कर उन्हें दर-दर भटकने और विस्थापन की त्रासदी झेलने को विवश कर दिया। इन परिस्थितियों के बाद भी आज आदिवासी विमर्श के नाम पर हमारा विरोध आर्य और अनार्य के द्वन्द्व तक सीमित रह जाता है। इस भूमंडलीकरण अथवा अमेरिकीकरण का प्रत्याख्यान कहीं हाशिए पर ही सिमटा रहता है।

मुक्तिबोध और हरिशंकर परसाई जैसे रचनाकारों ने साहित्य के तलघर में अनेक कथानकों एवं पात्रों की मार्फत भूमंडलीकरण की इस गुत्थी को सुलझाने का प्रयास किया है। **मुक्तिबोध** की कहानी *'क्लॉड ईथरली'* के अंशों में यह स्पष्ट है—

"अगर उनकी संस्कृति हमारी संस्कृति है, उनकी आत्मा हमारी आत्मा और उनका संकट हमारा संकट है-जैसा कि सिद्ध है कि है-जरा पढ़ो अखबार, करो बातचीत अँग्रेजीदाँ फर्राटेबाज लोगों से-तो हमारे यहाँ भी हिरोशिमा पर बम गिरानेवाला विमानचालक क्यों नहीं हो सकता और हमारे यहाँ भी साम्राज्यवादी, युद्धवादी लोग क्यों नहीं हो सकते ! मुख्तसर किस्सा यह है कि हिन्दुस्तान भी अमेरिका ही है।

मुझे पसीना छूटने लगा । फिर भी, मन यह स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं था कि भारत अमरीका ही है और यह कि क्लॉड ईथरली उसी पागलखाने में रहते हैं-मेरी आँखों में सन्देह, अविश्वास, भय, आशंका की मिली-जुली चमक जरूर रही होगी, जिसको देखकर वह बुरी तरह हँस पड़ा।"

वैश्विक और देशज सत्ता के बीच की आवाजाही को समझने के लिए पुल जैसी प्रतीत होती यह कहानी एक नये मिथक को भी अनावृत करती है। ऐसे में समकालीन कविता भूमंडलीकरण की प्रक्रिया के बाहरी स्वरूप की जाँच-पड़ताल तक सीमित नहीं रह जाती, बल्कि इसके कारण मनुष्यता के लगातार छीजते चले जाने की आन्तरिक परिस्थितियों की शिनाख्त भी करती है—

"दूरी को देखना है
तो ज़्यादा दूर जाने की ज़रूरत नहीं
जो समीप है उसे ग़ौर से देखिए
जितना देखेंगे
दूरी उतना दिखाई देगी"

'एक कवि की दूसरी नोटबुक' तैयार करते समय **राजेश जोशी** कवि-दायित्व के अंतर्गत-एक अतिरिक्त आयाम के तौर पर संवेदनशीलता के सर्वातिशायी महत्त्व पर ज़ोर देते हुए ठीक ही कहते हैं कि *"कवि का काम सिर्फ पाँच इन्द्रियों के चौकन्ना होने से नहीं चलता। कवि की पीठ भी संवेदनशील होनी चाहिए, स्त्रियों की तरह।"* यह कवि मनमोहन की संवेदनशीलता का सबूत है कि विश्वालिंगन की अमेरिकी साम्राज्यवादी कोशिश में धरती का आयतन जहाँ लगातार सिमटता चला जा रहा है, वहीं कवि का सर्जक मन अपने आस-पास के मनुष्य-संबंधों में बढ़ती खाई के प्रति चिंतित है। दरअसल हम खान-पान, वेश-भूषा, रहन-सहन और बोली-भाषा में भी वर्चस्वशाली अमेरिकी सभ्यता और संस्कृति की नकल के अभ्यस्त हो चुके हैं। एक-से-पन की तानाशाही से आज हम आक्रान्त हैं। भारत विविधता में भी एकता के जिस संदेश के लिए विख्यात रहा है, वह आज कुछ छिन्न-भिन्न हो चुका है। आज का कवि एक-से-पन की इस तानाशाही के प्रत्याख्यान में भारतीय परंपरा में अंतर्व्याप्त विविधता में भी एका के सशक्त संरचनात्मक सूत्र की तलाश करता है—

"भारत को बचाकर रखेगी/जलेबी/यों ही नहीं बन गया/वह ख़मीर/उसके पीछे है/हज़ारों बरस की साधना और अभ्यास/जिसे रात-भर में अंजाम दे दिया गया/इतनी क़रारी पूर्णता के साथ।/तपस्वी विलुप्त हो गये/घुस गये धनुर्धारी महानायकों के दौर/गाँधी जी तक हलाक़ दिये गये/जलेबी मगर अकड़ी पड़ी है थाल पर।"

कवि तो वैश्विक सत्ता की कुटिलताओं के बरअक्स एक सही विकल्प को खोजता है। अंततः एक-से-पन की तानाशाही और अनेकता में एकता के बीच हमें यह तय करना है कि दोनों में-से किस विकल्प का वरण किया जाए।

❑ **सहायक प्राध्यापक,** अस्थायी (हिंदी)

डॉ. अनीश कुमार

सावित्री बाई फुले एवं वर्तमान परिदृश्य

शिक्षा समाज के जागरण में मुख्य भूमिका निभाती है । वास्तव में शिक्षा किसी भी देश या समाज के विकास का आधारभूत ढांचा होता है । यह विदित है कि जिस समाज या देश की शिक्षा प्रणाली उच्च कोटि की होती है या यूं कहें कि जिस समाज या देश की शिक्षा उस समाज के सापेक्ष होती है, उस समाज के तत्व निहित होते हैं, उस देश का विकास बहुत तेज गति से होता है । आज दुनिया भर में यह प्रमाणित हो चुका है कि शिक्षा हर एक नागरिक का सम्पूर्ण विकास करती है । शिक्षा हमें जहां एक ओर स्कूली पाठ्यक्रमों से मिलती है वहीं दूसरी ओर सामाजिक परम्पराओं से भी मिलती है । समाज का ढांचा जैसा होगा शिक्षा उतनी ही महत्वपूर्ण हो जाती है । मतलब यह कि समाज का ढांचा यदि निम्न वर्ग का है तो उस समाज के शिक्षा कि महत्ता और अधिक बढ़ जाति है । गौरतलब है कि जिस समाज के भीतर स्त्रियाँ अधिक जागरूक होती है वह समाज कहीं अधिक विकसित हो रहा होता है । स्त्रियों के भीतर एक प्रशासक की क्षमता पुरुषों की अपेक्षा अधिक बेहतर होता है । भारत देश में ऐसी कई नायिकाएँ हैं जिन्होंने अपना योगदान देकर समाज को एक नयी दिशा प्रदान की है । इनमें सावित्री बाई फुले का नाम अग्रणीय है । इन्हें क्रांतिज्योति भी कहा जाता है । क्रांति सिर्फ राजनीतिक रूप में नहीं होती बल्कि समाज के भीतर फैली विभेदता, अंधविश्वास आदि को दूर करने के लिए विचारों कि क्रांति भी होती है । सावित्री बाई फुले के द्वारा जलायी गयी ज्योति आज के समय में और अधिक प्रासंगिक है ।

आज देश की पहली महिला शिक्षिका सावित्रीबाई फुले के योगदान को जिस तरह याद करना चाहिए, वैसे नहीं किया जाता । 19 वीं सदी में जब देश में राजनैतिक गुलामी के साथ-साथ सामाजिक गुलामी का भी दौर था, तब सावित्री बाई फुले ने शिक्षा

के महत्व को जाना, समझा और महिलाओं की आज़ादी के नए द्वार खोलकर उनमें नई चेतना का सृजन किया । स्त्रियों को उनके अधिकारों के प्रति चेतना से लैस किया । यदि दूसरे पक्ष से देखें तो हम पाते हैं कि संविधान लागू होने बाद स्त्रियों को उनका अधिकार कानूनी रूप से मिला है किन्तु सावित्री बाई फुले इस अधिकार की बात स्वतन्त्रता के पहले ही कर रही थीं । इस लिहाज से आज के समय में उनके द्वारा किए गए योगदान को समझना और जानना और भी जरूरी हो जाता है कि कैसे उन्होंने उस दौर में स्त्रियों के अधिकारों, अशिक्षा, छुआछूत, सतीप्रथा, बाल या विधवा-विवाह जैसी कुरीतियों पर आवाज उठाई होगी? कैसे उन रूढ़िवादी परंपराओ को तोड़कर महिलाओं को पढ़ने व आगे बढ़ने की राह दी होगी और देश की आधी आबादी महिलाओं को शिक्षा के माध्यम से मुख्यधारा में ला खड़ा किया होगा । उनका यह कार्य उनके स्त्री होने के कारण कहीं अधिक दुरूह था जबकि पूरा समाज पितृसत्ता कि जड़ों से लैस था । ऐसे में दांत के भीतर जीभ बनकर उन्होंने न केवल स्त्रियों के बारें में सोचा बल्कि एक नया रास्ता भी तैयार किया ।

तत्कालीन प्रतिकूल परिस्थितियों में समाज सुधारक सावित्री बाई फुले एक युग नायिका बनकर उभरीं । उन्हें सिर्फ समाज सुधारक कहकर उनके द्वारा किए गए कार्यों को सीमित नहीं किया जा सकता । अपनी तीक्ष्ण बुद्धि, निर्भीक व्यक्तित्व, सामाजिक सरोकारो से ओत-प्रोत ज्योतिबा फुले के साथ कंधे से कंधा मिलाकर दकियानूसी समाज को बदलने हेतु इन्होंने अपने तर्कों के आधार पर बहस किया । आज की स्त्री अभी भी इन तर्कों को अपने विषय वस्तु में शामिल करने से कतराती है । वे स्त्री जीवन को गौरवान्वित किया एवं सामाजिक न्याय को लक्षित किया । दरअसल आज देखिये तो सावित्री बाई फुले को सिर्फ दलित वर्ग की समाज सुधारक के तौर पर ही देखा जाता है । कहा जाता है कि 'स्त्रियाँ जन्म से ही शूद्र होती हैं' हालांकि वर्णव्यवस्था के अनुसार शूद्र सबसे निचले पायदान पर रखा गया है इसलिए स्त्रियाँ भी समाज में सबसे निचले पायदान पर ही मानी गई हैं चाहें वह किसी वर्ग/जाति की हों । ऐसे में यदि सावित्री जी स्त्री हितों की बात करती हैं तो वह सिर्फ दलित स्त्रियों की ही बात नहीं करती हैं । उनकी पाठशाला और विधवा आश्रमों में सभी वर्गों की महिलाओं का प्रवेश होता था । किन्तु आज के समय में हम यह देखते हैं कि ज़्यादातर गैर दलित स्त्रियाँ सावित्री बाई को अपनी नायिका नहीं मानती हैं ।

सावित्री बाई फुले को सिर्फ इस लिहाज से न देखा जाए कि वह एक दलित महिला थीं और उन्होंने कुछ स्कूलों की स्थापना की । उनका योगदान सिर्फ कुछ जातियों के विकास तक नहीं सीमित है । सावित्री बाई फुले अपने आपको एक मनुष्य की दृष्टि से देखती थीं । उनके समय में किसी भी जाति की महिलाओं को पढ़ने का अधिकार न के बराबर था । उन्होंने सभी वर्ग की महिलाओं के लिए स्कूल खोले और उसमे बिना किसी भेदभाव के सभी उपस्थिती सुनिश्चित किया । इस कार्य में उनके जीवन साथी ज्योतिबा फुले जी का पूरा योगदान मिला । फुले दंपति शिक्षा को बेहद महत्व देते थे । ज्योतिबा फुले के द्वारा चलाये गए शिक्षा के आंदोलन को सावित्री बाई फुले ने बखूबी आगे बढ़ाने में पूरा सहयोग दिया । ज्योतिबा फुले विद्या के महत्व धार्मिक किताबों से कहीं अधिक महत्व देते थे उनका मानना था कि -

विद्या बिना मति गयी, मति बिना नीति गयी
नीति बिना गति गयी, गति बिना वित्त गया
वित्त बिना शूद्र गये !
इतने अनर्थ एक अविद्या ने किये ।

महात्मा फुले ने जीवन में शिक्षा के अभाव से पड़ने वाले प्रभाव को रेखांकित करते हुए ये पंक्तियां 'किसानों का कोड़ा' नामक किताब में लिखी है । ज्योतिबा फुले ने समय रहते शिक्षा के महत्व को पहचाना । उन्होंने महसूस किया कि बहुजन समाज और उनके आसपास की महिलाएं शिक्षा की कमी के कारण गुलामी में हैं । इस आधार पर उन्होंने सुझाव दिया है कि ज्ञान की कमी के चलते बहुजन समाज को दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं का जीवन भर सामना करना पड़ता है । उन्होंने निदान बताते हुए कहा है कि इस दुर्भाग्य की जड़ अज्ञानता है ।

स्त्री और दलितों की शिक्षा के प्रति फूले दम्पत्ति की प्रतिबद्धता

किसी जूनून से कम नहीं थी । लगातार पैसे की कमी के बावजूद भी वे समर्पित भाव से इस काम में लगे रहे । उनका समर्पण इस रूप में स्पष्ट दिखाई देता है कि उन्होंने पूणे शहर और उसके आसपास कुल १८ स्कूल खोले जहां सभी विद्यार्थियों को निःशुल्क शिक्षा दी जाती थी । सावित्रीबाई द्वारा पढ़ाए गए न जाने कितने ही छात्रों के जीवन में उससे भारी परिवर्तन आया । लेकिन उनके इस योगदान को भारतीय महिलाएं या तो भूल गईं या जानबूझकर भुला दी गई । हम जब भी सावित्री बाई को याद करते हैं तो उन्हें सिर एक इतिहास की पात्र होने नाते याद करते हैं या उनके कार्यों को एक कहानी के तौर पर याद करते हैं । उनके विचारों को हम आत्मसात नहीं करते हैं । जबकि कहीं अधिक जरूरी यह होता है । सावित्री बाई फुले सिर्फ स्कूल खोलकर शिक्षा देने का कार्य नहीं किया बल्कि एक ऐसे समय में शिक्षा दे रही थीं जब उन्हें खुद पढ़ने का समय नहीं था । इसके बावजूद वह स्त्रियों को समाज, संस्कृति आदि के बारे में बता रही थी । उनकी कविताओं के एक-एक शब्द चिल्ला-चिल्लाकर स्त्रियों, दलितों को उनके अधिकारों के प्रति इंगित कर रहे हैं । इसे सिर्फ क्रांतिकारिता कह कर करके सीमित नहीं किया जा सकता । उन विचारों का समाज भीतर प्रभाव को भी देखना चाहिए और उनके विचारों को आत्मसात करना चाहिए।

दरअसल स्त्रियों उनका सम्मान से जीवित रहना बड़ी चुनौती है इसके लिए उनका आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होना ही एकमात्र उपाय है जिसके लिए उन्होंने कई धार्मिक मान्यताओं को तोड़ा और स्त्रियों को अपने बुनियादी अधिकारों के लिए जागरूक किया । यही बात आगे चलकर प्रभा खेतान भी कहती हैं कि 'स्त्रियों कि आजादी उनके पर्स से शुरू से होती है ।' सावित्री बाई फुले ने स्त्री की सदियों पुरानी शारीरिक और मानसिक रूप से गुलाम छवि को ध्वस्त कर उसे स्वतंत्र इंसान के रूप में जीने के लिए प्रेरित किया । यह सत्य है कि स्त्री केवल श्रम और देह ही नहीं बल्कि स्वतंत्र विचार रखने वाली पुरुष के सामान इंसान है । उसे इसी रूप में देखने की जरूरत है । यह सोचने पर समाज को विवश कर ज्योतिबा के परिवर्तनवादी आंदोलन में पूरा सहयोग दिया ।

आज भारतीय समाज के जो हालात हैं उससे यह दिखाई देता है कि भारतीय समाज फिर से उन्हीं सामाजिक बुराइयों कि तरफ लौट रहा है । जिसका सावित्री बाई आजीवन विरोध करती रहीं । स्त्रियों और दलितों को सावित्री बाई गुलामी से मुक्त कर उन्हें सम्मान के साथ जीने के लिए जिन्दगी भर संघर्ष करती रहीं उनको फिर गुलाम बनाए रखने की साज़िश होने लगी है । उनकी अभिव्यक्ति की आज़ादी पर पहरा लगाया जा रहा है । उन्हें उनके मानवाधिकारों से वंचित किया जा रहा है । समाज कि आधी आबादी महिलाओं/लड़कियों को ऐसे माहौल में शिक्षा के साथ-साथ स्वाभिमान से जीने के लिए आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होना बहुत ज़रूरी है । उनका अपने हक़-अधिकारों के लिए जागरूक होना जरूरी है । महिलाएं अपने आपको एक मनुष्य की दृष्टि से देखें । उनके मनुष्य बनने के रास्ते में जो भी आए उससे संघर्ष करना जरूरी हो गया है । और जब उनके अधिकारों का हनन हो तो उसके लिए संघर्ष करना, लड़ना बहुत जरूरी है । यदि आज लड़कियां और महिलाएं सावित्री बाई फुले की शिक्षा को अपनाएं और उनको अपना रोल मॉडल बनाएं तो कोई उनका किसी भी प्रकार का शोषण नहीं कर सकता । कोई उन पर हिंसा नहीं कर पायेगा । कोई उन पर पितृसत्ता व्यवस्था नहीं थोप पायेगा । जब महिलाएं शत-प्रतिशत आत्मनिर्भर बनेगीं तो इससे देश का भी विकास होगा और देश प्रगतिशील बनेगा । सावित्री बाई फुले से प्रेरणा लेकर शिक्षित-जागरूक लड़कियां अन्य लड़कियों और महिलाओं को शिक्षित, जागरूक कर समाज और देश के विकास प्रगति में अपना योगदान कर सकती हैं । जब स्त्रियाँ पढ़-लिख कर शिक्षित होकर, सावित्री बाई के संघर्ष को जानकार जितना जागरूक होंगी समाज का विस्तार उतना ही अधिक होगा । समाज से पितृसत्ता धीरे-धीरे खत्म होने लगेगी ।

❑ **सहायक प्राध्यापक,** अस्थायी (हिंदी)

डॉ. आशीष कुमार यादव

हिंदी साहित्य में विज्ञान कथा

यह हिंदी साहित्य में विज्ञान कथा विधा का संक्षिप्त इतिहास है। समाज में जैसे विज्ञान का प्रचार-प्रसार बढ़ रहा है और उसकी महत्ता से लोग रू-ब-रू हो रहे हैं, वैसे ही अब विभिन्न पत्र-पत्रिकाएँ भी इस विधा को महत्व दे रही हैं। इनमें अब इस विधा से संबंधित विभिन्न लेख दिन-प्रतिदिन प्रकाशित हो रहे हैं। यदि 'स्वतंत्र भारत', 'राष्ट्रीय सहारा', 'धर्मयुग', 'जनसत्ता', 'हंस', 'जनधर्म', 'शिविरा' जैसी पत्र-पत्रिकाओं में कभी-कभी विज्ञान कथाओं का प्रकाशन होता है तो अब सुप्रसिद्ध पत्रिका 'विज्ञान प्रगति' के प्रत्येक अंक में हिंदी की एक मौलिक विज्ञान कथा व अनुदित विज्ञान कथा बराबर प्रकाशित हो रही है। इसके अतिरिक्त 'विज्ञान कथा', 'विज्ञान आपके लिए' जैसी पत्रिकाएँ लगातार विज्ञान कथाओं का प्रकाशन कर रही हैं। लेकिन यह बात अब भी सोचनीय है कि जो स्थान पाश्चात्य जगत में विज्ञान कथा व कथाकारों का है, वह स्थान अभी भारत देश में नहीं है। इस यात्रा में हमें कई मंजिलों से गुजरना पड़ेगा, तभी हम वह मुकाम प्राप्त कर सकते हैं। मैं उम्मीद करता हूँ कि 21वीं सदी के अंत तक यह मुकाम विज्ञान कथा और कथाकार अवश्य ही प्राप्त कर लेंगे।

बीज शब्दः

विज्ञान कथा, अंतरिक्ष, फोटोफोन, इंटरनेट, प्रौद्योगिकी, मोबाइल, प्रतिरोपण, सिंदूरी ग्रह, मृत्युंजयी, हरा मानव, देहदान, रोबोट, टेस्टट्यूब बेबी, मानव क्लोन, ऑपरेसन जेनेसिस, कालजयी यात्रा, कम्प्यूटर की मौत।

मूल आलेखः

हिंदी विज्ञान कथाओं को 'साइंस फैंटेसी' और 'साइंस फिक्शन' दो वर्गों में बाँटा गया है। यदि दोनों की प्रवृत्तिगत विशेषताओं को देखा जाए तो 'साइंस फैंटेसी' में कथाकार स्वच्छंद कल्पना करता

है, लेकिन इसमें कथाकार विज्ञान के नियमों से सीमाबद्ध नहीं रहता है। साइंस फैंटेसी में कथा वैज्ञानिकता का कलेवर लिए हुई दिखाई पड़ती है, लेकिन उसके सृजन में विज्ञान की कोई निश्चित भूमिका नहीं होती है। इस वर्ग में भविष्यगत कल्पना से युक्त कथानक को अभिपर्याय रूप में संबंधित विज्ञान कथाओं को लिया जाता है। जबकि साइंस फिक्शन में वैज्ञानिक तथ्यों का कथानक में स्वच्छंद प्रयोग नहीं किया जाता है। साइंस फिक्शन में वैज्ञानिक तथ्यों का प्रयोग एक मर्यादित सीमा के भीतर रहकर कथानक को गढ़ा-बुना जाता है। इनके वैज्ञानिक तथ्यों के प्रयोग में वैज्ञानिक विश्वसनीयता बराबर बनी रहती है। इनमें ऐसे ही वैज्ञानिक तथ्यों का प्रयोग करना उचित होगा, जो विज्ञान सत्यसिद्ध कर चुका हो। मंजुलिका लक्ष्मी के अनुसार, "वैज्ञानिक विश्वसनीयता ही इसकी (विज्ञान कथाओं की) रीढ़ होती है।"[1]

हिंदी साहित्य में विज्ञान कथा की परंपरा के विकास को मूलतः तीन चरणों में बाँटा जा सकता है। पहला चरण, स्वतंत्रता के पूर्व की विज्ञान कथाएँ; दूसरा चरण, स्वतंत्रता के बाद की विज्ञान कथाएँ; तीसरा चरण, समकालीन समय की विज्ञान कथाएँ हैं। इसको दूसरे शब्दों में कहा जाए तो शुरुआती दौर की विज्ञान कथाएँ; दूसरा चरण, विकास के दौर की विज्ञान कथाएँ; तीसरा चरण, विकसित दौर की विज्ञान कथाएँ हैं। हिंदी साहित्य में विज्ञान कथा की परंपरा का यह विभाजन कोई लक्ष्मण रेखा नहीं है। हाँ, यह जरूर है कि विज्ञान कथाओं में प्रवृत्तिगत परिवर्तन को देखते हुए और इसकी समृद्ध व लम्बी परंपरा को विभिन्न चरणों में विभाजित करके इनका अध्ययन और विश्लेषण करना सरल हो जाता है।

हिंदी साहित्य में स्वतंत्रता के पूर्व या शुरुआती दौर की विज्ञान कथाओं पर पाश्चात्य विज्ञान कथाओं का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। जिस प्रकार पाश्चात्य देशों के शुरुआती दौर में अंतरिक्ष, ग्रहों, नक्षत्रों आदि से संबंधित विभिन्न विज्ञान कथाएँ लिखी गयीं, उसी प्रकार हिंदी साहित्य में भी विज्ञान कथाएँ लिखी गयीं। इस दौर में मौलिक विज्ञान कथाओं का अभाव रहा है। हिंदी साहित्य में विज्ञान कथा लेखन की परंपरा की शुरुआत बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक से होता है। यदि गौर से देखा जाए तो पं. अम्बिकादत्त व्यास द्वारा संपादित पत्रिका 'पीयूष प्रवाह' में धारावाहिक के रूप में 'आश्चर्य वृत्तांत' (1883 ई.) हिंदी विज्ञान कथा सर्वप्रथम प्रकाशित होती हैं। कालक्रम की दृष्टि से देखने पर यह हिंदी साहित्य की पहली विज्ञान कथा मालूम पड़ती है, जबकि कुछ विज्ञान कथाकार और आलोचक सुप्रसिद्ध पत्रिका 'सरस्वती' के भाग-1, संख्या-7 में प्रकाशित बाबू केशव प्रसाद सिंह की विज्ञान कथा 'चंद्रलोक की यात्रा' (1905 ई.) को हिंदी साहित्य की पहली विज्ञान कथा मानते हैं। यदि दोनों हिंदी विज्ञान कथाओं के कथानकों का विश्लेषण किया जाए तो 'आश्चर्य वृत्तांत' पर जूल्स बर्न का उपन्यास 'जर्नी टू सेन्टर ऑफ द अर्थ' का प्रभाव दिखाई पड़ता है। वहीं पर 'चंद्रलोक की यात्रा' पर जूल्स बर्ने के उपन्यास 'फाइव वीक्स इन ए बैलून' का प्रभाव दिखाई पड़ता है।

कुछ लोग पाश्चात्य विज्ञान कथाओं के प्रभाव के कारण इन्हें हिंदी साहित्य की पहली विज्ञान कथा मानने से इनकार करते हैं। मुझे जहां तक प्रतीत होता है कि कोई भी विधा एकाएक उत्पन्न नहीं हो सकती है।

किसी भी रचना को विभिन्न पड़ावों से गुजरना होगा, तभी वह अपना मौलिक स्वरूप ग्रहण करती है। मात्र पाश्चात्य के प्रभाव के कारण इसे हिंदी की पहली विज्ञान कथा मानने से इनकार करना शायद अतार्किक होगा। इन दोनों विज्ञान कथाओं में भारतीय सामाजिक परिवेश व उसकी प्रवृत्तियों का वर्णन मिलता है। यहाँ तक कि इनके पात्र भी भारतीय नामकरण के अनुकूल हैं।

इन दोनों हिंदी विज्ञान कथाओं के कथानक व कालक्रम को यदि ध्यान से देखा जाए तो कालक्रम की दृष्टि से 'आश्चर्य वृत्तांत' (1883 ई.) हिंदी साहित्य की पहली विज्ञान कथा मालूम होती है। लेकिन शिल्प की दृष्टि से 'चंद्रलोक की यात्रा' हिंदी साहित्य की पहली विज्ञान कथा प्रतीत होती है। क्योंकि इस कहानी के कथानक की विषय-वस्तु का चुनाव काफी सधा हुआ है और इसमें तत्कालीन समाज पर सूदखोरों का प्रभाव वर्णित किया गया है। इस कहानी की संभाव्यता आज हकीकत का स्वरूप ग्रहण कर

चुकी है।

हिंदी साहित्य में पहली विज्ञान कथा के विषय में डॉ. राजकुमारी उपाध्याय का मानना है कि " 'चंद्रलोक की यात्रा' और 'आश्चर्यजनक घंटी' को हिंदी की प्रारम्भिक वैज्ञानिक कहानियाँ नहीं कहा जा सकता, क्योंकि ये दोनों ही विदेशी साहित्य फ्रांसीसी और अमेरिकन साहित्य से उधार ली गयी हैं।"[2]

प्रेमबल्लभ जोशी की विज्ञान कथा 'छाया पुरुष' 1915 ई. में प्रकाशित हुई थी। यह प्रकाश के अपवर्तन पर आधारित कहानी है और इसमें रहस्यमयता पूरी तरह विद्यमान है। दो पहाड़ों के बीच बने हुए एक कुंड में ज्यों-ज्यों पानी भरता जाता है, एक मनुष्य की छाया जैसे आगे बढ़ती हुई दिखाई देती है, लेकिन जैसे-जैसे पानी कम होने लगता है, छाया अदृश्य हो जाती है। गाँव वाले कुंड में भूत का वास समझ कर भय से घबरा उठते हैं। बरकिट साहब गाँव वालों के समक्ष एक प्रयोग करके रहस्य का अनावरण कर देते हैं।

हिंदी विज्ञान कथा साहित्य की परंपरा को यदि ध्यान से देखा जाए तो शुरुआती दौर (1900 ई.) से लेकर विकास के दौर (1950 ई.) तक पाश्चात्य विज्ञान कथाओं से प्रेरित व प्रभावित हिंदी में कई विज्ञान कथाएँ लिखी गयी हैं। इसी समय कई पाश्चात्य विज्ञान कथाओं का अनुवाद भी प्रकाशित किया गया था। अनेक वर्षों से आ रही इस परंपरा को सर्वप्रथम राहुल सांकृत्यायन तोड़ते हैं। पं. राहुल सांकृत्यायन द्वारा 'बाईसवीं सदी' 1924 ई. में एक लघु उपन्यास लिखा गया, जो किताब महल इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक में न केवल विश्व सरकार और विश्व भाषा की संकल्पना विद्यमान है, बल्कि फोटोफोन (विडियो फोन), मोबाइल, इंटरनेट आदि की संकल्पना भी है। आजकल काफी हद तक उनकी सभी संकल्पनाएँ साकार हो चुकी हैं। यद्यपि पं. राहुल सांकृत्यायन समाजवादी विचारधारा से प्रभावित थे, तथापि उसी के अनुरूप वे अपने इस लघुकाय उपन्यास में 2124 ई. के समाज का वर्णन करते हैं, यथा – "भूमंडल में सभी जगह अब समता का राज्य है। अब मनुष्य बराबर है। स्त्री-पुरुष बराबर हैं। सभी जगह श्रम और भोग का सामान मूल मंत्र रखा गया है। न अब भूमंडल में जमींदार हैं, न सेठ-साहूकार हैं, न राता है।, न प्रजा, न धनी, न निर्धन, न ऊँच हैं, न नीच। सारे भूमंडलवासियों का एक कुटुम्ब है। पृथ्वी की सभी स्थावर जंगम संपत्ति इसी कुटुम्ब की संपत्ति है।"[3]

इस लघुकाय उपन्यास के पूरे कथानक में भारतीय परिवेश का परिचय मिलता है। इसमें भारत के विज्ञान व प्रौद्योगिकी की प्रगति, शिक्षा व्यवस्था, ग्रामीण संस्कृति व शहरी संस्कृति का परिचय मिलता है। पं. राहुल सांकृत्यायन अपने इस लघु उपन्यास में तत्कालीन समाज के जीवन के विषय में वर्णन करते हुए लिखते हैं – "मनुष्य कुल चार घंटे काम करके ही सारी आवश्यकताओं को प्राप्त कर बाकी बीस घंटे जीवन के अन्य आनंदों के उपभोग में लगाता है।"[4]

विज्ञान कथा की इस परंपरा में डॉ. नवल बिहारी मिश्र और यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक' का इस क्षेत्र में आना इस विधा के लिए नव-जीवन की प्राप्ति के समान था। इन्होंने अपने प्रतिभा द्वारा विज्ञान कथा को मौलिक व आधुनिक स्वरूप प्रदान किया है। इन दोनों के विज्ञान की पृष्ठभूमि और उसका अध्ययन विज्ञान कथा के रचनाकारों के रचना संसार पर कथा की सृष्टि पर विस्मयकारी प्रभाव डालती है। डॉ. नवल बिहारी मिश्र के बहुमूल्य योगदान के विषय में डॉ. बाल फोंडके कहते हैं कि "डॉ. नवल बिहारी मिश्र ने विशुद्ध विज्ञान कथाओं की रचना की और हिंदी विज्ञान कथा के सही स्वरूप की प्राण-प्रतिष्ठा की। भाषा, शिल्प, कथानक और विज्ञान की आत्मा के कारण इनकी कहानियाँ वास्तविक विज्ञान कथाएँ हैं।"[5]

यदि हिंदी विज्ञान कथा के वास्तविक स्वरूप प्रदान करने के लिए डॉ. नवल बिहारी मिश्र को याद किया जाता है तो यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक' को हिंदी विज्ञान कथाओं के भारतीयकरण के लिए याद किया जाता है। इन्होंने विज्ञान कथाओं को भारतीय परिवेश व देशकाल, वातावरण के अनुरूप ढाला है। डॉ. अरविंद मिश्र इनके योगदान की चर्चा करते हुए कहते हैं - "यदि भावी विज्ञान कथा के स्वरूप निर्धारण में डॉ. नवल बिहारी मिश्र का अमूल्य योगदान है

तो यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक' ने इसे देशज स्वरूप प्रदान किया।"[6]

डॉ. नवल बिहारी मिश्र का उपन्यास 'अपराध का पुरस्कार' 1962 ई. में प्रकाशित हुआ था। इनकी प्रमुख हिंदी विज्ञान कथाएँ 'अधूरा आविष्कार', 'आकाश का रास्ता', 'हत्या का उद्देश्य' इनकी कथा संग्रहों में संकलित हैं। 'सरस्वती', 'विज्ञान लोक' और 'त्रिपथगा' में प्रकाशित 15 हिंदी विज्ञान कथाएँ 'अधूरा आविष्कार' में संकलित हैं - 'अधूरा आविष्कार', 'मंगल ग्रह की पहली यात्रा', 'भूत और प्रेत', 'हिमसमाधि', 'पथभ्रष्ट', 'अपराध और अपराधी', 'अस्पष्ट सीमा', 'काल-भ्रंश', 'दूसरी दुनिया', 'बेटी का ब्याह', 'चौथी पीढ़ी', 'पुनर्जन्म', 'सफर का साथी', 'ऊँची उड़ान', 'शुक्र ग्रह की यात्रा' आदि।

हिंदी साहित्य की विधा विज्ञान कथा की इस समृद्ध परंपरा में डॉ. ओमप्रकाश शर्मा ने कई वैज्ञानिक उपन्यासों का सृजन किया है, यथा - 'मंगल यात्रा' (1959 ई.), 'युग मानव' (1981 ई.), 'जीवन और मानव', 'गाँधीयुग पुराण' आदि। इनके वैज्ञानिक उपन्यासों में पाश्चात्य विज्ञान कथा का प्रभाव दिखाई पड़ता है। लेकिन इसमें निहित भारतीय तत्वों का सम्मिश्रण इनकी अपनी विशेषताएँ हैं। इनके वैज्ञानिक उपन्यास पौराणिक संकल्पनाओं से गुथे हुए हैं। डॉ. ओमप्रकाश शर्मा की वैज्ञानिक दृष्टि का मूल्यांकन करते हुए शुकदेव प्रसाद का कहना है – "विज्ञान कथाकार का यह भी दायित्व है कि विज्ञान के भावी खतरों से लोक मानस को आगाह भी करता चले। इस काम को डॉ. शर्मा ने बखूबी के साथ किया है।"[10]

डॉ. ओमप्रकाश शर्मा के सभी वैज्ञानिक उपन्यासों में 'मंगल यात्रा' (1959 ई.) सर्वाधिक प्रसिद्ध है, क्योंकि इस उपन्यास में उन्होंने विज्ञान के प्रभाव व दुष्प्रभाव दोनों पक्षों की चर्चा बखूबी के साथ की है। डॉ. रामधारी सिंह 'दिनकर' इस वैज्ञानिक उपन्यास की भूमिका में लिखते हैं – "लेखक ने वैज्ञानिक कल्पनाओं के आधार पर एक ऐसी कथा की सृष्टि की है, जिससे विज्ञान के गुण और उसके खतरे जनता की समझ में आसानी से आ जायेंगे।... 'मंगल यात्रा' हिंदी उपन्यासों में एक नये क्षितिज का निर्माण करती है।"[11]

1970 का दशक हिंदी विज्ञान कथा की परंपरा के लिए कई मायने में महत्वपूर्ण रहा था। इस दशक में गुणात्मक रूप में और उसी के अनुपात में मात्रात्मक रूप में खूब विज्ञान कथाएँ लिखी गयीं। इस दशक में जहाँ पर इस परंपरा में कई प्रतिभावान लेखक उभरे, वहीं इन विज्ञान कथाकारों ने अपनी विज्ञान कथाओं द्वारा कई नयी प्रवृत्तियों को इस समृद्ध परंपरा को प्रदान किया। इनमें कैलाश साह, देवेन्द्र मेवाड़ी, शुकदेव प्रसाद आदि प्रतिनिधि हिंदी विज्ञान कथाकार हैं।

विज्ञान कथा लेखन के प्रमुख स्तम्भकारों में देवेन्द्र मेवाड़ी (1975 ई.) भी एक हैं। आपने इसी दशक में विज्ञान कथा लेखन के क्षेत्र में प्रवेश किया और आज भी आप उसी ऊर्जा, श्रद्धा और कड़ी मेहनत से लेखन कार्य में व्यस्त हैं। देवेन्द्र मेवाड़ी का लघु उपन्यास 'सभ्यता की खोज', (1979 ई.) बुद्धिमान मशीनों पर ज्यादा निर्भरता के दुष्प्रभाव की ओर संकेत करती है। देवेन्द्र मेवाड़ी के दो हिंदी विज्ञान कथा संग्रह प्रकाशित हुए हैं 'भविष्य' (1994 ई.) तथा 'कोख' (1998 ई.)। 'भविष्य' कथा संग्रह में आपकी छह विज्ञान कथाएँ सम्मिलित हैं - 'सभ्यता की खोज', 'एक और युद्ध', 'डॉ. गजानन का आविष्कार', 'गुडबॉय मि. खन्ना', 'खेम एंथनी की डायरी' तथा 'भविष्य'। इसी प्रकार 'कोख' विज्ञान कथा संग्रह में सात विज्ञान कथाएँ संकलित हैं। 'कोख', 'अलौकिक प्रेम', 'दिल्ली मेरी दिल्ली', 'पिता', 'चूहे', 'अतीत में एक दिन' और 'अंतिम प्रवचन'। 'कोख' विज्ञान कथा में सामाजिक परिस्थितियों में परखनली शिशु तकनीक पर आधारित कथा है। इससे उत्पन्न कई कानूनी पेचीदगियों को मेवाड़ी जी ने सफलतापूर्वक उजागर किया है। इसी प्रकार आपने 'दिल्ली, मेरी दिल्ली' में दिल्ली में बढ़ते प्रदूषण पर अपनी लेखनी चलायी है।

1980 के दशक में कई अतिमहत्वपूर्ण विज्ञान कथाकारों का इस परंपरा में आगमन हुआ था। इनमें डॉ. अरविंद, डॉ. राजीव रंजन उपाध्याय, हरीश गोयल आदि हैं। आप तीनों इस दशक के

प्रतिनिधि विज्ञान कथाकार हैं। आपने न केवल गुणात्मक व प्रचुर मात्रा में विभिन्न विज्ञान कथाएँ लिखीं, बल्कि काफी लम्बे समय से आ रही विज्ञान कथा की परंपरा को विविध आयामी बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। आप सबने विज्ञान कथाओं की मूलभूत संवेदनाओं को नये स्वरूप प्रदान करने के साथ उनकी भाषा, शिल्प, शैली में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन किया है। हिंदी साहित्य की विज्ञान कथा की परंपरा आप तीनों प्रमुख विज्ञान कथाकारों का आजीवन ऋणी रहेगी।

डॉ. अरविंद मिश्र हिंदी साहित्य के इस विधा के संदर्भ में गंभीर व्यक्तित्व के धनी हैं। मुझे यह अनुशासन व गंभीरता उनके निजी जीवन की प्रतिक्रिया प्रतीत होती है। डॉ. अरविंद मिश्र का हिंदी विज्ञान कथा में योगदान बहुआयामी है। आपने कई हिंदी विज्ञान कथाएँ लिखने के साथ-साथ आपके विभिन्न पत्रिकाओं में इस विधा पर लगातार लेख प्रकाशित होते रहे हैं। इसके साथ ही साथ विज्ञान कथा आलोचक के रूप में भी आपकी भूमिका इस हिंदी विज्ञान कथा परंपरा में महत्वपूर्ण रही है। विज्ञान कथाओं के प्रचार-प्रसार में आपकी बहुत महत्वपूर्ण भूमिका रही है। डॉ. मिश्र की पहली विज्ञान कथा 'गुरु दक्षिणा' (1985 ई.) प्रकाशित होती है, जिसमें अन्य ग्रह के रोबोट शोधार्थी को भी मानवीय संवेदनाओं से युक्त दिखाया गया है। डॉ. अरविंद मिश्र का 'एक और क्रौंच वध' (1998 ई. में) प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में कुल बारह कहानियाँ - 'गुरुदक्षिणा', 'धर्मपुत्र', 'देहदान', 'सम्मोहन', 'राज करेगा रोबोट', 'अछूत', 'अनुबन्ध', 'अंतरिक्ष में कोकिला', 'अंतिम दृश्य', 'ऑपरेशन कामदामन', 'एक और क्रौंच वध' संकलित हैं। भाषा पर अनुशासन के धनी डॉ. अरविंद मिश्र के विज्ञान कथाओं में मानवीय संवेदनाएँ अहम् भूमिका का निर्वहन करती हैं। 'धर्मयुग' में प्रकाशित 'एक और क्रौंच वध' पशु-पक्षियों के प्रति मानवीय संवेदना जागृत करने में सफल रही है। यह अत्यंत मार्मिक कथा है। 'ऑपरेशन कामदामन' व्यवहार विज्ञान पर आधारित कथा है। कथा का नायक कामेश्वर यह पता लगाने की कोशिश करता है कि क्या कामेच्छा को दबाने पर सर्जना में वृद्धि की जा सकती है। डॉ. अरविंद मिश्र देश की एकमात्र हिंदी विज्ञान कथाओं की संस्था 'भारतीय विज्ञान कथा लेखक समिति' के पूर्व सचिव भी रह चुके हैं। आपने हिंदी के विभिन्न नवगठित विज्ञान कथाकारों को एक मंच भी प्रदान किया है।

1990 के दशक में डॉ. राजीव रंजन उपाध्याय प्रतिनिधि विज्ञान कथाकारों में से एक हैं। आप फैजाबाद में कैंसर शोध संस्थान के पूर्व निदेशक रह चुके हैं। आपने विभिन्न विज्ञान कथा संग्रहों का सृजन किया है। हिंदी विज्ञान कथा साहित्य विधा आपका सदैव ऋणी रहेगी और वह केवल आपके इस विधा में सृजनात्मक योगदान के लिए ही नहीं, बल्कि आपके लगन व कठोर मेहनत द्वारा सितम्बर 1996 ई. में हिंदी विज्ञान कथाकारों की पहली समिति 'भारतीय विज्ञान कथा समिति' गठित करने के लिए भी ऋणी रहेगी कि आपने इस विधा को और समृद्ध व गतिशील बनाया है। आपकी हिंदी विज्ञान कथाओं में ऐतिहासिकता, वैज्ञानिकता, विभिन्न वैज्ञानिक तथ्यों से युक्त है तथा सहज प्रवाहमयी भाषा व शिल्प, शैली की दृष्टि से सामाजिक रूढ़ियों को दूर करने का प्रयास, पाश्चात्य संस्कृति व समाज का दृश्य, उत्कृष्ट दिखाई पड़ती है।

हिंदी विज्ञान कथा को अपने श्रम, सृजन एवं विलक्षण मेधा से सिंचित करने वाले लेखकों में हरीश गोयल का नाम भी खूब प्रसिद्ध है। इनका विज्ञान कथा संसार व्यापक है। इन्होंने कई हिंदी वैज्ञानिक उपन्यास और विज्ञान कथा संग्रहों का सृजन किया है। हरीश गोयल नवीनतम वैज्ञानिक खोजों एवं तकनीकी प्रगतियों पर सूक्ष्म नजर रखते हुए उसे अपने कथानक का आधार बनाते हैं।

समकालीन विज्ञान कथा साहित्य को गौर से देखने पर हम पाते हैं कि 1990 के दशक के प्रतिनिधि हिंदी विज्ञान कथाकार आज भी पूरी श्रद्धा, समर्पण और निष्ठा के साथ हिंदी साहित्य के इस विधा को निरंतर आगे बढ़ा रहे हैं। इसके साथ ही इनसे प्रेरित होकर नये-नये प्रतिभावान विज्ञान कथाकार भी इस लेखन विधा की परंपरा में उभर रहे हैं, जो इस विधा के लिए शुभ संकेत है। ये नये विज्ञान कथाकार कथानक के विषय-वस्तु में, उसके शिल्प, शैली, भाषा, विज्ञान कथा के मानवीय संवेदनाओं, समाज की समस्याओं आदि

से संबंधित विभिन्न प्रयोग करते देखे जा सकते हैं। इन नये प्रतिभावान विज्ञान कथाकारों में जीशान हैदर जैदी, मनीष मोहन गोरे, जाकिर अली रजनीश, अमित कुमार, डॉ. कल्पना कुलश्रेष्ठ आदि हैं। इनके योगदान की चर्चा क्रमवार करना उचित होगा।

डॉ. कल्पना कुलश्रेष्ठ ने रोबोट, पारलौकिक जीवन और मानव संबंधी विषयों पर हिंदी विज्ञान कथाओं का सृजन किया है। 'उनकी विरासत' (1995), 'राबी' (1996), 'अपराधी' (1997), और 'उस सदी की बात' (1997) उल्लेखनीय हिंदी विज्ञान कथाएँ हैं। 'अपराधी' में नायिका शुभद्रा का मस्तिष्क एक दुर्घटना में पूरी तरह क्षतिग्रस्त हो जाता है, लेकिन अन्य अंग ठीक तरह से कार्य कर रहे थे। चिकित्सीय दृष्टि से उसे मृत माना जा चुका था। लेकिन प्रयोगशाला में तैयार किये गये न्यूगेन रासायनिक संकेतों के स्थान पर क्षीण विद्युत संकेत भेजकर कृत्रिम मस्तिष्क को शुभद्रा के मस्तिष्क के स्थान पर प्रत्यारोपित किया गया और शरीर की तंत्रिका कोशिका से जोड़ दिया गया। इसी प्रकार 'संभावित' हिंदी विज्ञान कथा अंतरिक्ष पर आधारित कथा है।

डॉ. कल्पना कुलश्रेष्ठ ने 'उस सदी के बाद में' 21वीं सदी के परमाणुविक जैविक युद्ध के बाद विनष्ट सभ्यता, जो 26वीं सदी में विकास का स्तर पाती है, की कल्पना की है। इस सदी में सब कुछ कम्प्यूटर संचालित है। ऐसे समाज में विकलांगता को कोई स्थान नहीं अर्थात् ऐसे लोगों के लिए कोई दया या करुणा जैसी मानवीय संवेदना नहीं है। मनुष्य एक बुद्धिमान रोबोट मात्र बनकर रह जाता है। 'विरासत' 'हिमीकरण' पर केन्द्रित विज्ञान कथा है। राजशेखर भूसनूर मठ ने 'शवों के रहस्य' में भी कृत्रिम मस्तिष्क के प्रत्यारोपण की परिकल्पना की है।

एक विज्ञान कथाकार को मन से साहित्यकार होना अनिवार्य है। तभी वह विज्ञान जैसे विषयों में संवेदनाएँ पिरो सकता है। साथ ही एक विज्ञान कथाकार के लिए विज्ञान के विषयों की मूलभूत जानकारी भी आवश्यक है। उसे विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी में हो रही नित नयी खोजों से वाकिफ होना चाहिए। तभी वह भविष्य की सार्थक कल्पना कर सकता है।

निष्कर्ष-

यह हिंदी साहित्य में विज्ञान कथा विधा का संक्षिप्त इतिहास है। समाज में जैसे-जैसे विज्ञान का प्रचार-प्रसार बढ़ रहा है और उसकी महत्ता से लोग रू-ब-रू हो रहे हैं, वैसे-वैसे अब विभिन्न पत्र-पत्रिकाएँ भी इस विधा को महत्त्व दे रही हैं। इनमें अब इस विधा से संबंधित विभिन्न लेख दिन-प्रतिदिन प्रकाशित हो रहे हैं। यदि 'स्वतंत्र भारत', 'राष्ट्रीय सहारा', 'धर्मयुग', 'जनसत्ता', 'हंस', 'शिविरा' जैसी पत्र-पत्रिकाओं में कभी-कभी विज्ञानकथाओं का प्रकाशन होता है तो सुप्रसिद्ध पत्रिका 'विज्ञान प्रगति' के प्रत्येक अंक में हिंदी के मौलिक विज्ञान कथा व अनूदित विज्ञान कथा बराबर प्रकाशत हो रही है। इसके अतिरिक्त 'विज्ञानकथा', 'विज्ञान आपके लिए' जैसी पत्रिकाएँ लगातार विज्ञानकथाओं का प्रकाशन कर रही हैं। लेकिन यह बात अब भी सोचनीय है कि जो स्थान पाश्चात्य जगत् में विज्ञान कथा व कथाकारों का है, वह स्थान अभी भारत देश में नहीं है। इस यात्रा में हमें कई मंजिलों से गुजरना पड़ेगा, तभी हम वह मुकाम प्राप्त कर सकते हैं। मैं उम्मीद करता हूँ कि इक्कीसवीं सदी के अंत तक यह मुकाम विज्ञान कथा और कथाकार अवश्य ही प्राप्त कर लेंगे।

संदर्भ -

[1] पं. शिवगोपाल मिश्र (संपादक), भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन (लेख), विज्ञान (पत्रिका), प्रकाशक: विज्ञान परिषद प्रयाग, प्रयाग, अंक: 1989, पृष्ठ 32

[2] अजय सिंह, हिंदी साहित्य में विज्ञान कथा (शोध-प्रबंध), सन् 2002, पृष्ठ 28

[3] राहुल सांकृत्यायन, 'बाईसवीं सदी' प्रकाशक: किताबघर प्रकाशन, प्रयाग, संस्करण: 2012, पृष्ठ 73 (भारतीय विज्ञान कथाएं में संग्रहित), सम्पादक: शुकदेव प्रसाद *वही*, पृष्ठ 74

[4] गोपाल प्रसाद मिश्र (संपादक), विज्ञान (पत्रिका), अंक: मई 2000, पृष्ठ 4, प्रकाशक: प्रयाग विज्ञान परिषद, प्रयाग *वही*, पृष्ठ 5

[5] सूर्यकांत साह (अनुवादक), चंद्रलोक की यात्रा, प्रकाशक: इंडियन प्रेस इलाहाबाद, संस्करण: 1961, पृष्ठ 5

[6] गोपाल प्रसाद मिश्र (संपादक), विज्ञान (पत्रिका), अंक: मई 2000, पृष्ठ 4, प्रकाशक: प्रयाग विज्ञान परिषद, प्रयाग

[7] शुकदेव प्रसाद (संपादक), विश्व विज्ञान कथाएँ, प्रकाशक: किताबघर प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण: 2012, पृष्ठ 22

[8] शुकदेव प्रसाद (संपादक), भारतीय विज्ञान कथाएँ, प्रकाशक: किताबघर प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण: 2012, पृष्ठ 25 *वही*, पृष्ठ 25

[9] कैलाश साह, मृत्युंजयी (विज्ञान कथा संग्रह की भूमिका), प्रकाशक: राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण: 1976, पृष्ठ 15

[10] डॉ. राजीव रंजन उपाध्याय (संपादक), विज्ञान कथा, (त्रैमासिक पत्रिका), प्रकाशक: भारतीय विज्ञान समिति, फैजाबाद, अंक: सितम्बर-नवम्बर 2016 ई., पृष्ठ 29

❐ **सहायक प्राध्यापक**, अस्थायी (हिंदी)

मातृभाषा
दिवस
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय
भाव एक
भाषाएं अनेक
21 फरवरी 2025

मातृभाषा
दिवस
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय
भाव एक
भाषाएं अनेक
21 फरवरी 2025

NAAC

हिंदी दिवस
समारोह 2024
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय
बिलासपुर, छत्तीसगढ़
राजभाषा प्रकोष्ठ एवं हिंदी विभाग
का संयुक्त आयोजन

गुरु घासीदास विश्वविद्यालय
बिलासपुर (छ.ग.)
राजभाषा प्रकोष्ठ
विश्व हिंदी दिवस
समारोह 2024

गुरु घासीदास विश्वविद्यालय
विश्व हिंदी दिवस

हिंदी दिवस
समारोह 2024

हिंदी दिवस

विश्व हिंदी दिवस
समारोह 2024
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय
बिलासपुर (छ.ग.)

समारोह 2024
विश्व हिंदी दिवस
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय
बिलासपुर (छ.ग.)
राजभाषा प्रकोष्ठ

प्रेमचंद जयंती
समारोह
राजभाषा प्रकोष्ठ
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय
बिलासपुर, छत्तीसगढ़
का आयोजन

हिंदी दिवस
समारोह 2024
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय
बिलासपुर, छत्तीसगढ़
राजभाषा प्रकोष्ठ एवं हिंदी विभाग

हिंदी दिवस
समारोह 2024
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय
बिलासपुर, छत्तीसगढ़
राजभाषा प्रकोष्ठ एवं हिंदी विभाग

प्रेमचंद जयंती
समारोह
राजभाषा प्रकोष्ठ
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय
बिलासपुर, छत्तीसगढ़
का आयोजन

प्रेमचंद जयंती
समारोह
राजभाषा प्रकोष्ठ
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय

प्रेमचंद जयंती
समारोह
राजभाषा प्रकोष्ठ
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय

विश्व हिंदी दिवस

A+
NAAC

विश्व हिंदी दिवस

प्रेमचंद जयंती

हिंदी दिवस
समारोह 2024

प्रेमचंद जयंती
समारोह
राजभाषा प्रकोष्ठ
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय

प्रेमचंद जयंती
राजभाषा प्रकोष्ठ
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय

डॉ. आशुतोष सिंह

कविता

नज़दीकियां ...

नज़दीकियां,
इतनी न बढ़ा,
कि खुद को ढूंढ़ना पड़े फासलों में कहीं ...
पर दूरियां भी,
इतनी न रख,
कि हर कदम पर अजनबी बन जाएं हम यहीं ...
कहना हो,
तो दिल की बात यूँ कह,
कि खामोशी भी सुनी जा सके ...
पर चुप्पी,
इतनी न थोप,
कि जज़्बात की धड़कन दब सी जाए ...
रिश्तों को थाम,
पर यूँ पकड़,
कि जुड़ने की लचक बची रहे हर घड़ी ...
पर कसावट भी,
इतनी न दे,
कि सांस लेने के लिए छूट मांगनी पड़े कभी ...

ज़िन्दगी की कविता...

जीने के मायने बदल रहे हैं,
कोई किसी से न मिल रहा है, न साथ बैठ रहा है।

सब खुद को व्यस्त बता रहे हैं,
आखिर ऐसी ज़िन्दगी क्यों जी रहे हैं?

जब वक़्त नहीं अपनों के लिए,
और बेगानों की चाह में सब छोड़े जा रहे हैं।

जो कहते हैं खुद को अपना, उनमें अपनापन नहीं,
बेगानों को दिल में जगह दिए जा रहे हैं कहीं।

खुद को पहचानो, और ज़िन्दगी को भरपूर जियो,
पर वो पल फुर्सत और सुकून के हों, ऐसे पल खोजते रहो।

सच्ची मुस्कान, दिल का चैन, वही तो असली ख़ुशी है,
इन्हीं पलों में बसी ज़िन्दगी की पूरी कविता है।

दोस्त से मिलना...

वक़्त ने घेर ली थी ज़िन्दगी यूँ, जैसे कोई बंद किताब,
दोस्त से मिलते ही खुल गए, पन्ने पुराने, छूटे हिसाब।

उसकी आवाज़ में छुपी थी, अब भी वही पुरानी खनक,
मुस्कानों में लिपटी यादें, जैसे बचपन की कोई चहक।

हमने फिर से की वो बातें, जो कभी अधूरी रह गई थीं,
जैसे ठहरी नदी को फिर से, बहने की मंज़िल मिल गई थी।

चाय की प्याली में घुली, हँसी-ठिठोली की मिठास,
भूले-बिसरे क़िस्सों में बसी, दोस्ती की वही पुरानी प्यास।

वक़्त के पहिए ने चाहे, घुमा दिए हों जाने कितने मोड़,
दोस्त से मिलकर लगा, जैसे लौट आया फिर से वो दौर।

हर शिकवे-शिकायत धुल गए, बातों के सफ़र में कहीं,
दिल की राहों में फिर से, रौशनी सी बिछ गई यहीं।

साथ बिताए वो पल, अब भी दिल को छू जाते हैं,
मिलकर दोस्त से लगता है, जैसे सारे ग़म छूट जाते हैं।

दोस्ती का ये बंधन, जो वक़्त से भी पार है,
दोस्त से मिलना मानो, खुदा की कोई दुआ और प्यार है।

फिर से मिलने की आस, अब दिल में यूँ बसी रहेगी,
दोस्ती की ये राह, हमेशा दिल को जोड़ती रहेगी।

❑ **सहायक प्राध्यापक,** अंग्रेजी

डॉ. प्रसून सोनी

गजदल की यादें

वह चला गजदल सा, रौंद कर सब यादें
टूटे विटप और विहंग के आशियाने,
सब प्राण पखेरू तितर-बितर कर,
खोजते निलय, सब खंडहरपन।
वह चला गजदल सा, रौंद कर सब यादें
कुछ द्वंद वहीं पर बिखरे पड़े हैं,
कुछ समेटते जूठन के निवाले,
कुछ टूटी राहों को ढूंढ रहे हैं,
कुछ शोक में बिखरते कुटुंब।
वह चला गजदल सा, रौंद कर सब यादें
गुबार में उड़ते तिनकों का
हाल क्या ही जानिएगा।
जहां ठहरें, वहीं मंज़िल है,
बस इतना ही मानिएगा।
वह चला गजदल सा, रौंद कर सब यादें
शून्य कर गया भूत भ्रमर का,
देखा गिरते मधु-खंडों को,
देखा रस में मिले अश्क को,
जब मधुकर लेकर आए मकरंद।
वह चला गजदल सा, रौंद कर सब यादें
कौतूहल ही कौतूहल है,
कौन उठकर खड़ा करेगा
लहलहाते पुष्पों की कतारों को।
कौतूहल ही कौतूहल है,
कौनजगाएगा फिर प्राण के मानस को,
वह चला गजदल सा, रौंद कर सब याद।
अब न होगा शोर-शराबा,
अब न होंगी बातें, पर...
कोटरों में दबे बीज की बात हुई है।
वर्षा से यादों का कानन उपजेगा,
उत्पातों के इसी रण से।

❑ **सहायक प्राध्यापक,** ग्रामीण प्रौद्योगिकी

कविता

टिकेन्द्र प्रकाश सिंह

दिल्ली की बस यात्रा

मैं जब भी दिल्ली की बस में चढ़ता हूँ,
अपनी जान पर खेलकर चढ़ता और उतरता हूँ।
पर आप सोचेंगे कैसे, ये आप तभी समझेंगे जब,
उतरेंगे और चढ़ेंगे बिल्कुल मेरे जैसे।
जैसे ही बस आती है,
तो मैं बस की ओर दौड़ लगाता हूँ।
और अपने आप को लाईन में सबसे पीछे पाता हूँ।
हिम्मत करके बस में चढ़ा भी,
तो दरवाजे पर लटका नजर आता हूँ।
बड़ा मुश्किल है, यात्रा करना रोजाना,
क्योंकि आजकल फ्लाई ओवर्स का है, जमाना।
साइकल, मोटर साइकल में चलना है, खतरनाक,
इसलिये कार, चार पहिया और बस में ही करना आना-जाना
बस दिल्ली की जान है।
इसलिये बस में सुरक्षित चढ़ना और उतरना,
दिल्ली वालों की पहचान है।
दिल्ली में डीटीसी और प्राइवेट बस वालों का,
बहुत अच्छा मेल है।
सवारी देखकर भी डीटीसी बस का ना रूकना,
बस पैसों का खेल है।
प्राईवेट वाले तो कहीं भी बस रोक दें,
उनका बस चले तो पूरी दिल्ली को ही ठोंक दे।
इसलिये कहता हूँ भाइयों,
कि जान हथेली पर कभी न रखना।
बस जब स्टॉप पर खड़ी हो तभी चढ़ना-उतरना,
और मेरे जैसे कभी न यात्रा करना।

❑ **सहायक कुलसचिव,** अकादमी

गुरु घासीदास विश्वविद्यालय
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)
बिलासपुर (छत्तीसगढ़) भारत

सामाजिक सरोकार योजनाएँ -

- ☛ जी जी वी स्वाभिमान थाली (जी एस टी)
- ☛ जी जी वी श्रवण लाईन (जी एस एल)
- ☛ किलकारी डे-केयर सेंटर
- ☛ जी जी वी हेल्दी यूनिवर्सिटी मूवमेंट (जी जी वी-हम)
- ☛ फिटनेस एवम् वेलनेस सेंटर
- ☛ नटराज कला मंच
- ☛ स्वावलंबी छत्तीसगढ़ योजना
- ☛ जी जी वी प्याऊ सेवा (जी पी एस)
- ☛ जी जी वी सारथी योजना
- ☛ जी जी वी सुदामा योजना
- ☛ राष्ट्रीय कैडेट कोर (एन सी सी)
- ☛ राष्ट्रीय सेवा योजना (रा से यो)
- ☛ जी जी वी रक्त संबंध संस्कार (जी जी वी-आर एस एस)
- ☛ जी जी वी स्काउट एंड गाइड
- ☛ उन्नत भारत अभियान
- ☛ एक भारत श्रेष्ठ भारत
- ☛ एक पेड़ माँ के नाम
- ☛ जी जी वी शिक्षा मित्र संरकार (जी जी वी-एस एम एस)
- ☛ जी जी वी कुटुम्ब प्रबोधन संस्कार (जी जी वी-के पी एस)
- ☛ जी जी वी व्यावसायिक संस्थापन संस्कार (जी जी वी-वी एस एस)

UGC

University Grants Commission

ज्ञान-विज्ञान विमुक्तये

has recognised

GURU GHASIDAS VISHWAVIDYALAYA as

Category 1 UNIVERSITY with Grant of **Graded Autonomy**

गुरु घासीदास विश्वविद्यालय

(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)

केन्द्रीय विश्वविद्यालय अधिनियम 2019 के अंतर्गत स्थापित

बिलासपुर (छत्तीसगढ़) भारत

GURU GHASIDAS VISHWAVIDYALAYA, BILASPUR (C.G.)

ज्ञान पंथ कृपान कै धारा

ACCREDITED WITH GRADE A++ NAAC